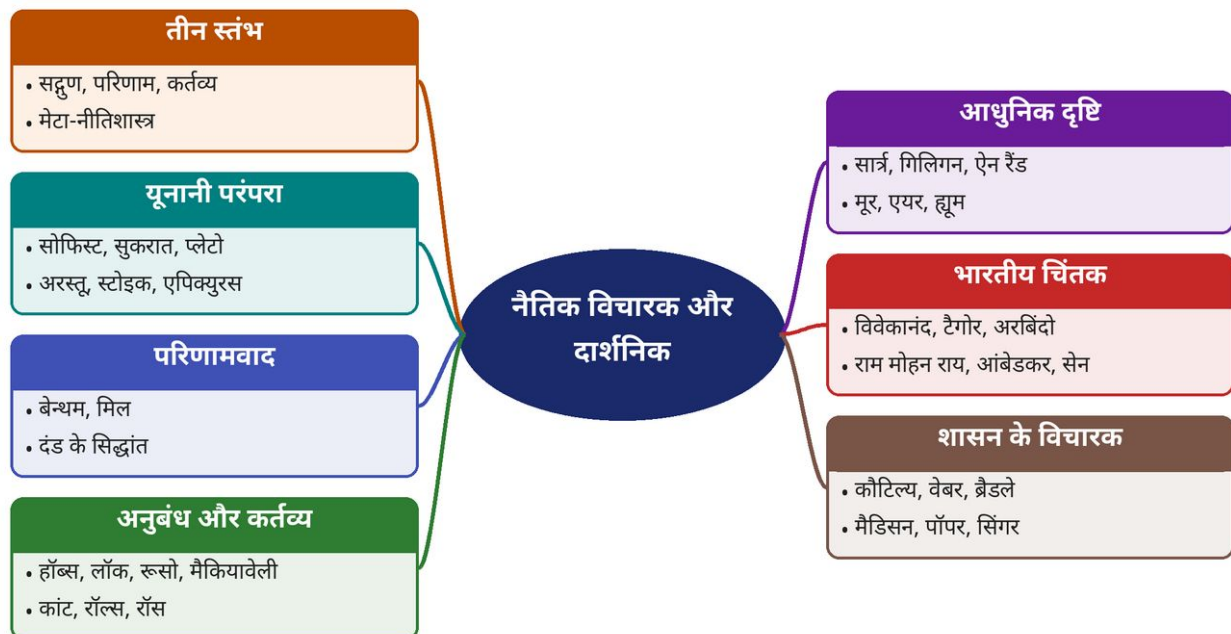


📖 शुरुआत एक सच्ची घटना से...

हरियाणा कैडर के IAS अधिकारी अशोक खेमका का नाम भारतीय प्रशासनिक इतिहास में एक अनोखे कारण से दर्ज है — अपने लगभग 34 साल के करियर में उनका तबादला 50 से भी ज़्यादा बार हुआ, यानी औसतन हर साल एक से ज़्यादा बार। हर बार जब उन्होंने किसी शक्तिशाली भू-सौदे या फ़ाइल में गड़बड़ी उजागर की, अगले ही हफ्ते उनका तबादला हो जाता। फिर भी उन्होंने कभी चुप रहना नहीं सीखा। जब उनसे पूछा गया कि वे थकते क्यों नहीं, तो उनका जवाब बेहद सीधा था — उन्होंने कभी अपनी ईमानदारी को इसलिए नहीं अपनाया कि इससे उन्हें तरक्की मिलेगी या नाम मिलेगा, बल्कि इसलिए क्योंकि वे इसे अपना कर्तव्य मानते थे। ठीक यही वह भावना है जिसे जर्मन दार्शनिक इमैनुएल कांट ने सदियों पहले 'गुडविल' (Good Will) कहा था — कोई कार्य सिर्फ तभी सच में नैतिक है जब वह परिणाम या नाम की चाहत से नहीं, बल्कि शुद्ध कर्तव्य-भाव से किया जाए। खेमका जी को शायद कभी कांट की किताब पढ़ने का मौका मिला हो या न मिला हो, पर उन्होंने कांट के सिद्धांत को अपने जीवन में जी दिखाया। यही वह ताक़त है जो सदियों पुराने नैतिक विचारकों के सिद्धांतों को आज भी जीवंत और प्रासंगिक बनाए रखती है — चाहे वह सुकरात हों या आंबेडकर, हर एक विचारक ने कहीं न कहीं यही सिखाया कि सही काम करने की वजह बाहरी इनाम नहीं, बल्कि भीतर की आवाज़ होनी चाहिए।

अध्याय 06 — एक नज़र में



चित्र 6.1: अध्याय 06 — एक नज़र में

कहानी: अध्याय की यात्रा — "विचारकों का पुस्तकालय: अधिकारी आरव की एक रात"

(यह एक काल्पनिक कहानी है। पुस्तकालय की हर अलमारी इस अध्याय के एक खंड से जुड़ी है।)

नए-नए उपखंड अधिकारी बने आरव के सामने अगली सुबह एक कठिन निर्णय था — एक बाँध परियोजना के लिए कुछ गाँवों का विस्थापन। रात को बेचैनी में वह प्रशिक्षण अकादमी के पुराने पुस्तकालय में जा बैठा और किताबों के बीच ही उसकी आँख लग गई। सपने में उसने देखा कि पुस्तकालय की हर अलमारी से एक विचारक निकलकर उससे बात कर रहा है।

पहली अलमारी — तीन रास्ते: एक बुजुर्ग पुस्तकालयाध्यक्ष ने बताया — "हर नैतिक प्रश्न को तीन तरह से देखा जाता है: तुम कैसे इंसान हो (सद्गुण), परिणाम क्या होगा (परिणामवाद), और तुम्हारा कर्तव्य क्या है (कर्तव्यवाद)।" (खंड 1)

दूसरी अलमारी — प्रश्न पूछने वाला: नंगे पाँव एक यूनानी आया — सुकरात। "बेटा, पहले खुद से सवाल पूछो। अपरीक्षित जीवन जीने योग्य नहीं।" उसके पीछे प्लेटो ने आत्मा के तीन भाग और चार सद्गुण समझाए, और अरस्तू ने कहा — "साहस कायरता और दुस्साहस के बीच का संतुलन है।" (खंड 2 से 4)

तीसरी अलमारी — सुख का गणित: बेन्थम एक तराजू लेकर आए — "गिनो, किस निर्णय से कितने लोगों को कितना सुख मिलेगा।" मिल ने टोका — "पर हर सुख बराबर नहीं; और किसी को हानि पहुँचाने की छूट किसी को नहीं।" स्टोइक मार्कस ऑरिलियस मुस्कराए — "जो तुम्हारे वश में नहीं, उसकी चिंता छोड़ो; जो वश में है, उसे पूरी निष्ठा से करो।" (खंड 5 और 6)

चौथी अलमारी — अनुबंध: हॉब्स, लॉक और रूसो आपस में बहस कर रहे थे — "राज्य क्यों बना? लोगों ने अपने कुछ अधिकार क्यों सौंपे?" लॉक ने आरव से कहा — "याद रखना, सरकार जनता की सहमति से चलती है; विस्थापितों की सहमति भी उतनी ही ज़रूरी है।" (खंड 7)

पाँचवीं अलमारी — कर्तव्य और न्याय: कांट ने सख्ती से कहा — "मनुष्य को कभी केवल साधन मत बनाना।" रॉल्स ने आँखों पर पट्टी बाँधकर कहा — "कल्पना करो कि तुम नहीं जानते कि तुम विस्थापित किसान बनोगे या शहर का उपभोक्ता — तब कौन-सा नियम बनाओगे?" (खंड 8 और 9)

छठी अलमारी — आधुनिक आवाज़ें: सार्त्र बोले — "तुम्हारा चुनाव ही तुम्हारी पहचान है, ज़िम्मेदारी से भागो मत।" कैरल गिलिगन ने याद दिलाया — "न्याय के साथ देखभाल भी चाहिए — विस्थापितों के आँसू भी फ़ाइल का हिस्सा हैं।" (खंड 10 और 11)

सातवीं अलमारी — भारत की आवाज़ें: विवेकानंद ने कहा — "जीव सेवा ही शिव सेवा"; टैगोर, अरबिंदो, राधाकृष्णन, अमर्त्य सेन और आंबेडकर एक-एक कर आए — किसी ने स्वतंत्रता की, किसी ने क्षमता की, किसी ने समानता और गरिमा की बात की। (खंड 12 से 15)

आठवीं अलमारी — शासन के शिल्पी: अंत में कौटिल्य आए — "प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है"; मैक्स वेबर ने नियम-आधारित निष्पक्ष नौकरशाही की बात की, और ब्रैडले ने कहा — "अपने पद के कर्तव्य को पहचानो।" दीवार पर हज़ारों वर्षों की एक लंबी समय-रेखा चमक रही थी। (खंड 16 और 17)

सुबह आरव की आँख खुली। उसने विस्थापन की फ़ाइल पर लिखा — "पहले सबसे कमज़ोर परिवारों की सहमति और पुनर्वास, फिर निर्माण।" उसे लगा, रात भर में उसने ढाई हज़ार वर्षों का ज्ञान एक निर्णय में उतार दिया। आइए, अब हम भी इस पुस्तकालय की हर अलमारी खोलते हैं।

इस कहानी से सीख: यह अध्याय नैतिकता के तीन स्तंभों से शुरू होकर यूनानी, उपयोगितावादी, अनुबंधवादी, कर्तव्यवादी, आधुनिक और भारतीय विचारकों से होते हुए शासन के विचारकों तक की यात्रा करता है — ताकि हर प्रशासनिक दुविधा को कई दृष्टियों से परखा जा सके।

आरव का सपना — पुस्तकालय की आठ अलमारियाँ



चित्र 6.2: आरव का सपना — पुस्तकालय की आठ अलमारियाँ

अध्याय विषय-सूची

1	नैतिक सिद्धांतों का वर्गीकरण — तीन मुख्य स्तंभ	10	विकासवादी नैतिकता, जी.ई. मूर एवं अन्य पाश्चात्य विचारक
2	सोफिस्ट (Sophists) एवं सुकरात (Socrates)	11	आधुनिक नैतिक दृष्टिकोण — अस्तित्ववाद, देखभाल का नीतिशास्त्र एवं नैतिक स्वार्थवाद
3	प्लेटो (Plato, लगभग 427-347 ईसा पूर्व) — दार्शनिक राजा एवं 4 सद्गुण	12	स्वामी विवेकानंद एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर
4	अरस्तू (Aristotle, 384-322 ईसा पूर्व) — नीतिशास्त्र के जनक	13	श्री अरबिंदो, डॉ. राधाकृष्णन एवं अमर्त्य सेन

5	परिणामवाद — हेडोनिज़्म, बेन्थम एवं मिल का उपयोगितावाद	14	दयानंद सरस्वती, राजा राम मोहन राय एवं डॉ. आंबेडकर
6	एपिक्युरवाद, स्टोइसिज़्म एवं कन्फ्यूशीवाद	15	अन्य भारतीय विचारक एवं तुलनात्मक विश्लेषण
7	सामाजिक अनुबंध के विचारक — मैकियावेली, हॉब्स, लॉक एवं रूसो	16	शासन और कर्तव्य के विचारक — ब्रैडले, वेबर, कौटिल्य एवं अन्य
8	इमैनुएल कांट (Immanuel Kant, 1724-1804) — कर्तव्यवाद के जनक	17	नैतिक विचारकों की ऐतिहासिक यात्रा — कालक्रम
9	जॉन रॉल्स (John Rawls) एवं डब्ल्यू.डी. रॉस (W.D. Ross)		

1. नैतिक सिद्धांतों का वर्गीकरण — तीन मुख्य स्तंभ

नैतिकता का अध्ययन करते समय तीन मुख्य दृष्टिकोणों को समझना ज़रूरी है — सद्गुण नैतिकता (Virtue Ethics), परिणामवाद (Consequentialism) और कर्तव्यवाद (Deontology)। ये तीनों किसी भी कार्य की नैतिकता को बिल्कुल अलग-अलग सवाल पूछकर परखते हैं।

नैतिक सिद्धांत	मुख्य प्रश्न	प्रमुख प्रतिपादक	प्रशासनिक उपयोग
सद्गुण नैतिकता (Virtue Ethics)	कर्ता कैसा व्यक्ति है?	सुकरात, प्लेटो, अरस्तू; जैन दर्शन; गीता (कृष्ण का चरित्र)।	अधिकारी के चरित्र-निर्माण पर बल, जैसे मिशन कर्मयोगी।
परिणामवाद (Consequentialism)	परिणाम क्या होगा?	बेन्थम, जे.एस. मिल, चार्वक।	अधिकतम लोगों को अधिकतम लाभ — जन-कल्याण योजनाएँ।
कर्तव्यवाद (Deontology)	कार्य नियमानुसार है क्या?	इमैनुएल कांट, डब्ल्यू.डी. रॉस, जॉन रॉल्स; गीता का कर्म योग।	नियमों का पालन, संवैधानिक शपथ, आचार-संहिता।

नैतिक सिद्धांतों के तीन स्तंभ



चित्र 6.3: नैतिक सिद्धांतों के तीन स्तंभ

1.1 सद्गुण-नीतिशास्त्र — "मुझे क्या करना चाहिए" नहीं, "मुझे कैसा होना चाहिए"

नीतिशास्त्र का केंद्रीय प्रश्न है — "मुझे कैसे जीना चाहिए?" पाश्चात्य परंपरा में इसके कई उत्तर हैं: धार्मिक उत्तर (धर्मग्रंथों के नियम मानो), उपयोगितावादी उत्तर (सुख अधिकतम करो, दुःख न्यूनतम) और कांट का उत्तर (वैसे कर्म करो जो सार्वभौमिक नियम बन सके)। इन सब में ज़ोर नियम, कर्तव्य और कर्म के सही-गलत पर है। इसके विपरीत सद्गुण-नीतिशास्त्र कोई कठोर नियम नहीं देता — यह व्यक्ति के चरित्र पर ध्यान देता है। इसका प्रश्न "मुझे क्या करना चाहिए?" नहीं, बल्कि "मुझे कैसा व्यक्ति बनना चाहिए?" है।

सद्गुण (दया, करुणा, ईमानदारी, उदारता) चरित्र की उत्कृष्ट विशेषताएँ हैं और दुर्गुण (लोभ, क्रोध) चरित्र के दोष। सद्गुण जन्मजात नहीं, बल्कि सचेत अभ्यास से विकसित किए जाते हैं — इसलिए इन्हें सद्गुणी व्यक्ति की "अर्जित प्रवृत्तियाँ" कहा जाता है। सद्गुण "होने की नैतिकता" (Morality of Being) हैं, जबकि कर्तव्य और अच्छे कर्म "करने की नैतिकता" (Morality of Doing)। एक सद्गुणी व्यक्ति अपने सद्गुणों से "छुट्टी नहीं लेता" — उसके सद्गुण उसके नियमित अच्छे आचरण से पहचाने जाते हैं। हर महापुरुष का सरल संदेश यही है — अच्छे बनो और अच्छा करो; और अच्छा बनने का रास्ता है लगातार अच्छा करना।

यूनानी शब्द	अर्थ	सरल व्याख्या
अरेते (Arete)	सद्गुण, उत्कृष्टता	किसी भी चीज़ का अपने कार्य में श्रेष्ठ होना
फ्रोनेसिस (Phronesis)	व्यावहारिक/नैतिक प्रज्ञा	किस परिस्थिति में क्या उचित है, यह पहचानने की समझ
यूडेमोनिया (Eudaimonia)	सुख, उत्कर्ष, सार्थक जीवन	मानवीय क्षमताओं का पूर्ण विकास

नैतिक सद्गुण बनाम नैतिकता-संहिता के सद्गुण: ईमानदारी जैसे सद्गुण अधिक विशिष्ट होते हैं — ये किसी विशेष आचार-संहिता के अनुरूप व्यक्तिगत कर्मों पर केंद्रित हैं; जबकि दया या साहस जैसे सद्गुण व्यापक होते हैं और कई तरह के व्यवहार को समेटते हैं। एक ईमानदार व्यक्ति दयालु भी हो सकता

है, पर एक दयालु व्यक्ति हमेशा ईमानदार हो, यह ज़रूरी नहीं — इसलिए किसी के चरित्र को परखते समय दोनों प्रकार देखने चाहिए। पश्चिम में **प्लेटो और अरस्तू** और पूर्व में **कन्फ्यूशियस और मेन्शियस** सद्गुण-नीतिशास्त्र के संस्थापक माने जाते हैं। कन्फ्यूशियस (551–479 ई.पू.) प्राचीन चीन के दार्शनिक थे, जिन्होंने परिवार, समाज और शासन में सदाचार तथा शिष्टाचार पर जोर दिया; मेन्शियस (लगभग 372–289 ई.पू.) उनके प्रमुख अनुयायी थे, जो मानते थे कि मनुष्य स्वभाव से अच्छा होता है और शिक्षा से उस अच्छाई को बढ़ाया जा सकता है।

सद्गुण-नीतिशास्त्र के लाभ	सद्गुण-नीतिशास्त्र की सीमाएँ
नैतिकता की व्यापक समझ देता है	"मैं कैसे फलूँ-फूलूँ?" असल में "मुझे क्या खुश करेगा?" जैसा स्व-हित का प्रश्न बन सकता है, जबकि नैतिकता दूसरों के साथ व्यवहार से जुड़ी है
नियम-आधारित नैतिकता की कठोरता से बचाता है	दुविधा में ठोस मार्गदर्शन नहीं देता — "वही करो जो सद्गुणी व्यक्ति करता" बहुत अस्पष्ट है
केवल कर्म नहीं, भीतरी भावनाओं और प्रेरणाओं पर भी ध्यान देता है	चरित्र बहुत हद तक जन्मजात स्वभाव और परवरिश (भाग्य) पर निर्भर है, फिर उसके लिए प्रशंसा-निंदा कैसे?
नारीवादी चिंतकों के "संबंध-आधारित" दृष्टिकोणों के लिए द्वार खोलता है	

1.2 परिणामवाद के तीन रूप और भ्रष्टाचार पर तीनों सिद्धांतों की दृष्टि

उद्देश्यवादी (Teleological) नीतिशास्त्र — ग्रीक "टेलोस" (लक्ष्य/परिणाम) से बना — कर्तव्य को उस लक्ष्य से निकालता है, जिसे प्राप्त करना अच्छा या वांछनीय है। इसके दो प्रमुख संप्रदाय हैं — **उपयोगितावादी** और **अनुबंधवादी**। परिणामवाद के भीतर तीन रूप हैं: **नैतिक स्वार्थवाद** (कर्म सही है यदि उसके परिणाम केवल कर्ता के लिए अनुकूल हों), **नैतिक परार्थवाद** (कर्ता को छोड़कर बाकी सबके लिए अनुकूल हों) और **उपयोगितावाद** (सबके लिए अनुकूल हों)। इसके विपरीत **कर्तव्यवाद** (ग्रीक "डिऑन" — कर्तव्य) मानता है कि कुछ कर्म परिणाम चाहे जो हों, अपने आप में सही या गलत होते हैं।

सिद्धांत	भ्रष्टाचार को कैसे देखता है
सद्गुण-नीतिशास्त्र	भ्रष्टाचार न्याय और "किसी को हानि न पहुँचाने" जैसे मूल सद्गुणों का उल्लंघन है, क्योंकि यह कुछ लोगों का पक्ष लेना है।
कर्तव्यवाद (कांट)	परिणाम चाहे जो हो, भ्रष्टाचार में छल है और यह लोगों की तार्किक-नैतिक क्षमता को कमजोर करता है — इसलिए यह अनैतिक है।
परिणामवाद (उपयोगितावाद)	कुछ लोग तर्क देते थे कि भ्रष्टाचार "पहियों में तेल डालकर" नौकरशाही को तेज़ बनाता है — पर आज यह तर्क लगभग नहीं दिया जाता, क्योंकि तात्कालिक "दक्षता" का लाभ प्रशासनिक व्यवस्था को होने वाली दीर्घकालिक हानि से नष्ट हो जाता है।

आसान परिभाषा: परिणामवाद के तीन उप-प्रकार

परिभाषा: परिणामवाद के भीतर भी यह भेद ज़रूरी है कि 'किसका' हित देखा जा रहा है — स्वयं का, दूसरों का, या सबका।

आसान भाषा में: जैसे कोई निर्णय लेते समय पूछें — 'इससे मुझे क्या फायदा' (स्वार्थवाद), या 'इससे दूसरों को क्या फायदा' (परार्थवाद), या 'इससे सबसे ज़्यादा लोगों को क्या फायदा' (उपयोगितावाद) — तीनों अलग-अलग सोच हैं। **उदाहरण:** स्वार्थवाद (Ethical Egoism) — केवल स्वयं का हित (चार्वाक दर्शन, ऐन रैंड); परार्थवाद (Ethical Altruism) — दूसरों का हित (गीता का लोकसंग्रह); उपयोगितावाद (Utilitarianism) — सबका हित (बेन्थम, मिल)।

यह वर्गीकरण पूरे अध्याय की **नींव** है — आगे आने वाले हर पाश्चात्य विचारक को इन तीन खानों (सद्गुण / परिणाम / कर्तव्य) में से किसी एक में रखकर पहचानने से उनकी तुलना आसान हो जाती है।

2. सोफिस्ट (Sophists) एवं सुकरात (Socrates)

2.1 सोफिस्ट — प्राचीन यूनान के 'व्यावसायिक शिक्षक'

ईसा पूर्व 5वीं शताब्दी के एथेंस में सोफिस्ट ऐसे घुमंतू (एक नगर से दूसरे नगर जाने वाले) शिक्षकों का एक समूह था, जो पैसे लेकर वाद-विवाद (Rhetoric), तर्कशास्त्र और राजनीति सिखाते थे। इनकी सबसे बड़ी विशेषता — और सबसे बड़ी आलोचना भी — यह थी कि इनके लिए कोई भी नैतिक सत्य 'निरपेक्ष' (Absolute) नहीं, बल्कि पूरी तरह सापेक्ष (Relative) था।

सोफिस्ट	मुख्य विचार
प्रोटागोरस (Protagoras, लगभग 490–420 ई.पू.)	"मनुष्य ही सब वस्तुओं का मापदंड है" (Man is the measure of all things) — यानी सत्य/नैतिकता व्यक्ति-सापेक्ष है, कोई एक निरपेक्ष सत्य नहीं।
थ्रेसीमेकस (Thrasymachus, 5वीं सदी ई.पू.; प्लेटो की 'रिपब्लिक' का पात्र)	न्याय कुछ नहीं बल्कि 'शक्तिशाली का हित' (Might is Right) है — जो सत्ता में है, वही तय करता है कि न्याय क्या है।
गोर्जियस (Gorgias, लगभग)	वाक्-पटुता (Rhetoric) की शक्ति पर बल — तर्क से किसी भी बात को सही या गलत सिद्ध किया जा सकता है।

सोफिस्ट	मुख्य विचार
483-375 ई.पू.)	
प्रोडिकस (Prodicus, 5वीं सदी ई.पू.)	शब्दों के सूक्ष्म अर्थ-भेद (Synonyms के बीच अंतर) पर विशेषज्ञता — भाषा-विश्लेषण के प्रारंभिक जनक माने जाते हैं।

आज के संदर्भ में सोफिस्ट: सोफिस्टों का नैतिक सापेक्षवाद आज के प्रशासन में दिखने वाले "स्थिति के अनुसार नैतिकता बदलने" (Situational Ethics) वाले रवये जैसा है — जैसे कोई अधिकारी परिस्थिति देखकर नियम की व्याख्या ही बदल दे। यही प्रवृत्ति अनिश्चितता और मनमानी को जन्म देती है।

2.2 सुकरात (Socrates, लगभग 469-399 ईसा पूर्व)

सुकरात प्राचीन यूनान (ग्रीस) के नगर एथेंस के दार्शनिक थे, जो बाज़ारों और गलियों में लोगों से प्रश्न पूछकर उन्हें सोचने के लिए प्रेरित करने के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्हें पश्चिमी नैतिक दर्शन का जनक माना जाता है। उन्होंने स्वयं कुछ नहीं लिखा — उनके विचार उनके शिष्य प्लेटो के संवादों (Dialogues) के माध्यम से हम तक पहुँचे हैं। सुकरात ने सोफिस्टों के सापेक्षवाद को सीधी चुनौती दी और तर्क दिया कि नैतिक सत्य वस्तुनिष्ठ (Objective) और सार्वभौमिक (Universal) होता है, न कि व्यक्ति-सापेक्ष।

नैतिक सार्वभौमिकता (Moral Universalism): सुकरात के समय समाज में नैतिक सापेक्षवाद प्रचलित था — "सत्य अनेक हैं" (भारत के जैन दर्शन के 'स्याद्वाद' जैसा विचार, जिसके अनुसार एक ही वस्तु को अलग-अलग दृष्टियों से देखा जा सकता है और हर दृष्टि केवल आंशिक सत्य बताती है), जिससे समाज में विरोधाभास और संघर्ष पैदा हो रहे थे। सुकरात के लिए सद्गुण कुछ ऐसा था जिसे **सब जान सकते हैं**, और सद्गुणी वही है जो जानता है कि सद्गुण क्या है — इस तरह उन्होंने नैतिक सार्वभौमिकता की नींव रखी।

सुकराती पद्धति (Socratic Method): सुकरात ने लोगों को यह नहीं बताया कि उन्हें कैसे जीना चाहिए, बल्कि यह बताया कि **जीवन के प्रश्नों की जाँच कैसे करें**। किसी विचार या विश्वास को गहन प्रति-परीक्षा (Cross-examination) और आत्म-चिंतन के बाद ही स्वीकार करना चाहिए। जब सोफिस्ट दावा करते कि वे जानते हैं कि न्याय या संयम क्या है, तो सुकरात उनसे परिभाषा माँगते और प्रश्नों के ज़रिए दिखा देते कि वह अधूरी है। इसे **"परिकल्पना-निषेध की नकारात्मक पद्धति"** कहा गया — जो परिकल्पनाएँ विरोधाभास की ओर ले जाती हैं, उन्हें एक-एक कर हटाते हुए बेहतर उत्तर तक पहुँचना। यानी उन्होंने धार्मिक सिद्धांत की जगह **मानवीय तर्क** पर नैतिकता खड़ी करने का प्रयास किया।

सुकराती पद्धति — प्रश्नों से सत्य तक



चित्र 6.4: सुकराती पद्धति — प्रश्नों से सत्य तक

आसान परिभाषा: ज्ञान ही सद्गुण है (Knowledge is Virtue / Virtue is Knowledge)

परिभाषा: सुकरात के अनुसार जो व्यक्ति सच में जानता है कि 'अच्छा' क्या है, वह कभी जान-बूझकर बुरा काम नहीं करेगा — बुरा काम हमेशा अज्ञानता (Ignorance) से ही होता है, दुष्टता से नहीं।

आसान भाषा में: जैसे कोई व्यक्ति सच में जानता हो कि आग हाथ जला देगी, तो वह जान-बूझकर हाथ आग में नहीं डालेगा — ठीक वैसे ही अगर किसी अधिकारी को सच में यह पूरा ज्ञान/समझ हो कि भ्रष्टाचार से समाज को कितना नुकसान होता है, तो वह भ्रष्टाचार करने से खुद-ब-खुद बचेगा। **उदाहरण:** एक अधिकारी जो ट्रेनिंग व अनुभव से यह गहराई से समझता है कि किसी योजना में लापरवाही से गरीबों का कितना नुकसान होगा, वह स्वाभाविक रूप से ज़्यादा ज़िम्मेदारी से काम करता है — यही 'ज्ञान ही सद्गुण है' का व्यावहारिक रूप है।

सुकरात की प्रमुख नैतिक शिक्षाएँ

सिद्धांत	अर्थ एवं प्रशासनिक प्रासंगिकता
परीक्षित जीवन (Examined Life)	"अपरीक्षित जीवन जीने योग्य नहीं है" (An unexamined life is not worth living) — निरंतर आत्म-चिंतन ज़रूरी है। एक अधिकारी को भी नियमित रूप से अपने निर्णयों की नैतिक समीक्षा करते रहना चाहिए।
सौम्य संयम (Mild Asceticism)	सुकरात स्वयं बहुत सादा जीवन जीते थे — भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे न भागना। प्रशासन में यह सादगी व निर्लोभता (सुख-सुविधा के लालच से मुक्ति) के रूप में झलकता है।
शपथ पवित्र होती है (Oaths are Sacred)	किसी भी दी गई शपथ या वचन का पालन नैतिक कर्तव्य है। सिविल सेवक की संवैधानिक शपथ इसी सिद्धांत की आधुनिक अभिव्यक्ति है।
स्वतंत्र चिंतन (Independent Reasoning)	भीड़ की राय या सत्ता के दबाव में आकर नहीं, बल्कि अपने विवेक व तर्क से सही-गलत तय करना — भले ही उसकी कीमत खुद की जान (जैसा सुकरात के साथ हुआ) हो।

सुख का स्रोत ज्ञान: सुकरात के अनुसार (1) सभी मनुष्य स्वभाव से सुख चाहते हैं; (2) सुख बाहरी वस्तुओं पर नहीं, बल्कि इस पर निर्भर है कि हम उनका उपयोग कैसे करते हैं; (3) सुख **इच्छाओं की शिक्षा** पर निर्भर है — आत्मा जब अपनी इच्छाओं को शारीरिक भोग से हटाकर ज्ञान और सद्गुण के प्रेम की ओर मोड़ती है, तो वही प्रज्ञा सच्चा सुख है। व्यक्तिगत स्तर पर ज्ञान सुख का स्रोत है और सामाजिक स्तर पर **सुशासन** का — सुकरात मानते थे कि शासन सबसे अच्छा तब चलता है, जब उसे वे लोग चलाएँ जिनमें सबसे अधिक योग्यता, ज्ञान और आत्म-समझ हो।

नैतिक बौद्धिकतावाद (Moral Intellectualism): सुकरात का मानना था कि जो जानता है कि सद्गुण क्या है, वह अनिवार्य रूप से सद्गुणी आचरण करेगा; जो बुरा करता है, वह केवल अज्ञान या भ्रम के कारण करता है — **"कोई भी जानबूझकर बुरा नहीं करता।"** उनका पूरा दर्शन दो नैतिक सिद्धांतों पर टिका है — (1) **अपने मन की बात कहने की स्वतंत्रता, यानी सत्ता के सामने सच बोलने का साहस, और (2) वस्तुनिष्ठता।** वस्तुनिष्ठता का अर्थ है कि सही-गलत का निर्णय व्यक्तिगत पसंद-नापसंद या भीड़ की राय से नहीं, बल्कि तथ्य और तर्क की कसौटी पर हो, ताकि वह हर व्यक्ति पर समान रूप से लागू हो सके। इन्हीं से सद्गुण-नीतिशास्त्र का जन्म हुआ, जिसे प्लेटो ने समृद्ध किया और अरस्तू ने स्थापित किया।

☀ प्रसिद्ध कथन (Socratic Wisdom)

"मैं बस इतना जानता हूँ कि मैं कुछ नहीं जानता" (I know one thing, that I know nothing) — सुकरात का यह प्रसिद्ध कथन बौद्धिक विनम्रता (Intellectual Humility) का सबसे बड़ा प्रतीक माना जाता है — यानी सच्चा ज्ञानी वही है जो अपनी सीमाओं को स्वीकार करता है।

2.3 सुकरात का बलिदान — साधन-साध्य की पवित्रता का प्रारंभिक उदाहरण

- ◆ एथेंस की अदालत ने सुकरात पर 'युवाओं को भ्रष्ट करने' व 'नए देवताओं की पूजा सिखाने' का आरोप लगाकर मृत्युदंड सुनाया।
- ◆ शिष्यों ने जेल से भाग निकलने की योजना बनाई, पर सुकरात ने यह कहकर मना कर दिया कि जिस राज्य के कानूनों में उन्होंने जीवन भर आश्रय लिया, अब उन्हीं कानूनों को धोखा देना अनुचित होगा — भले ही निर्णय अन्यायपूर्ण हो।
- ◆ उन्होंने विष का प्याला स्वेच्छा से पी लिया — यह नियम-पालन (Rule of Law) के प्रति सर्वोच्च निष्ठा का ऐतिहासिक उदाहरण माना जाता है।

2.4 सुकरात की शिक्षाओं का आधुनिक प्रशासनिक उदाहरण

भारतीय प्रशासनिक सेवा में भी ऐसे कई अधिकारी देखे गए हैं जो सुकरात की तरह स्वतंत्र-चिंतन व नियम-निष्ठा को सर्वोपरि मानते हैं — जैसे राजस्थान कैडर के IAS अधिकारी जितेंद्र कुमार सोनी, जिन्होंने अपनी पोस्टिंग के दौरान पारदर्शिता व नियम-आधारित निर्णयों पर जोर देकर प्रशासनिक अखंडता की मिसाल पेश की। इसके विपरीत, जब कोई अधिकारी बाहरी दबाव या भीड़ की राय के आगे झुककर अपने विवेक-सम्मत निर्णय से समझौता कर लेता है, तो वह सुकरात की 'स्वतंत्र चिंतन' वाली सीख से दूर हो जाता है — ऐसे उदाहरण प्रशासनिक जगत में जवाबदेही और साहस के महत्व को रेखांकित करते हैं।

सुकरात की एक सीमा — अक्रेशिया: अरस्तू (सुकरात के शिष्य के शिष्य) ने बताया कि केवल "ज्ञान" होना काफी नहीं; **इच्छाशक्ति की कमजोरी (Akrasia)** के कारण मनुष्य जानते हुए भी गलत कर सकता है — जैसे कोई अधिकारी जानता है कि रिश्तत गलत है, फिर भी दबाव या लालच में ले लेता है।

3. प्लेटो (Plato, लगभग 427-347 ईसा पूर्व) — दार्शनिक राजा एवं 4 सद्गुण

प्लेटो प्राचीन यूनान (एथेंस) के दार्शनिक और सुकरात के सबसे प्रमुख शिष्य थे — उन्होंने लगभग 387 ईसा पूर्व एथेंस में 'अकादमी' (Academy) की स्थापना की, जिसे विश्व का पहला संगठित उच्च-शिक्षा संस्थान माना जाता है। उनकी सबसे प्रसिद्ध कृति 'रिपब्लिक' (The Republic) है, जिसमें उन्होंने एक आदर्श राज्य की परिकल्पना प्रस्तुत की।

आदर्श जगत बनाम वास्तविक जगत: प्लेटो की सबसे प्रसिद्ध कृति **"द रिपब्लिक" (Politeia)** है। उनके अनुसार सच्चा ज्ञान अलग-अलग वस्तुओं को जानने में नहीं, बल्कि उस **सामान्य तत्व** को जानने में है जो सब में साझा है — जैसे "अच्छाई" का सामान्य स्वरूप। प्लेटो कहते हैं कि **"शुभ का आकार" (Form of the Good)** देश-काल से परे एक पूर्ण, शाश्वत और अपरिवर्तनीय सत्ता है — यह **आदर्श जगत** है; जबकि हमारा **वास्तविक जगत** देश-काल के साथ बदलता रहता है। सुकरात के लिए ज्ञान मानवीय तर्क से आता है, पर प्लेटो के लिए आदर्श जगत से — यानी प्लेटो के अनुसार हम जो कुछ सचमुच जानते हैं, वह बदलती वस्तुओं को आँखों से देखकर नहीं, बल्कि बुद्धि द्वारा उन शाश्वत 'आकारों' (Forms) को पहचानकर जानते हैं, जिनकी ये वस्तुएँ केवल अधूरी नकल हैं।

न्यायपूर्ण क्यों बनें? प्लेटो के अनुसार अन्यायी व्यक्ति हमेशा **आंतरिक कलह** में जीता है — अधूरी इच्छाओं की बेचैनी से जूझता रहता है और कभी "अभाव के न होने" से अधिक कुछ नहीं पाता — यानी उसे जो सुख मिलता है, वह बस किसी कमी के कुछ देर के लिए पूरी हो जाने भर का होता है (जैसे भूख मिटना), कोई स्थायी संतोष नहीं, और कुछ ही देर में नई इच्छा फिर बेचैन कर देती है। जबकि न्यायी व्यक्ति की आत्मा **तर्क के शासन में सामंजस्यपूर्ण** रहती है, और उसे ज्ञान की खोज से सच्चा संतोष मिलता है। हमें न्यायपूर्ण इसलिए बनना चाहिए, क्योंकि ऐसा करके हम **"स्वयं के साथ और ईश्वर के साथ एक"** होते हैं — यानी हमारे भीतर कोई द्वंद्व नहीं रहता, मन और आचरण एक दिशा में चलते हैं, और हम उस शाश्वत 'शुभ' के निकट पहुँचते हैं।

3.1 आत्मा के तीन भाग (Tripartite Soul)

प्लेटो के अनुसार मनुष्य की आत्मा (व्यक्तित्व) तीन भागों में बँटी होती है, और जब ये तीनों अपने-अपने उचित स्थान पर संतुलित रहें, तभी व्यक्ति में 'न्याय' (Justice) कायम होता है।

आत्मा का भाग	स्वभाव	समाज में समकक्ष वर्ग
तर्कशील भाग (Rational)	बुद्धि, विवेक, ज्ञान की खोज।	शासक/दार्शनिक वर्ग (Rulers)।
उत्साही भाग (Spirited)	साहस, सम्मान, इच्छाशक्ति।	सैनिक/रक्षक वर्ग (Auxiliaries/Warriors)।
वासनात्मक भाग (Appetitive)	भूख, इच्छाएँ, भौतिक सुख।	उत्पादक/श्रमिक वर्ग (Producers/Artisans)।

3.2 चार सद्गुण (Four Cardinal Virtues)

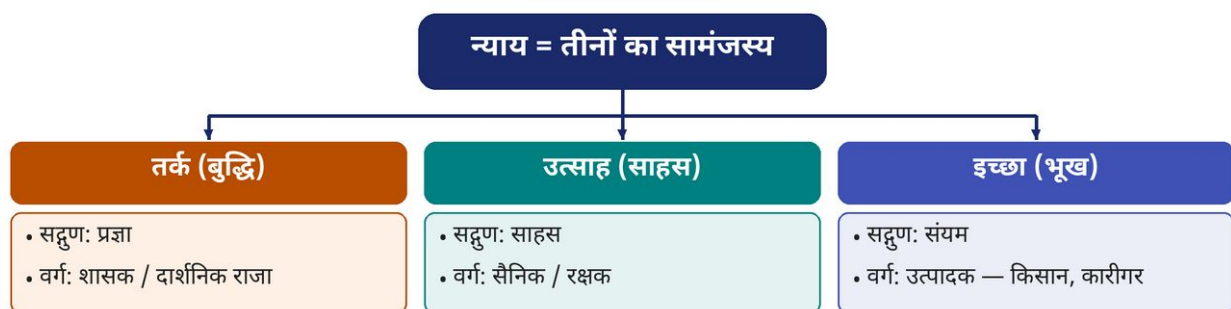
जब आत्मा के तीनों भाग अपनी उचित सीमा में कार्य करते हैं, तो चार सद्गुण उत्पन्न होते हैं — यही चार सद्गुण आगे चलकर पश्चिमी नैतिक-दर्शन की नींव बने।

सद्गुण	किस भाग से संबंधित	प्रशासनिक उदाहरण
प्रज्ञा/बुद्धिमत्ता (Wisdom)	तर्कशील भाग — शासक वर्ग का गुण।	नीति-निर्माण में दूरदर्शिता व सही निर्णय-क्षमता।
साहस (Courage)	उत्साही भाग — रक्षक वर्ग का गुण।	अनियमितता के विरुद्ध खड़े होने का नैतिक साहस।
संयम (Temperance)	तीनों भागों में संतुलन व आत्म-नियंत्रण।	सत्ता व संसाधनों के दुरुपयोग से बचाव।
न्याय (Justice)	जब हर भाग अपने उचित कार्य में रहे — समग्र संतुलन।	निष्पक्ष व समावेशी शासन — जैसे भ्रष्टाचार-विरोधी अभियान।

"कार्डिनल" शब्द का अर्थ: लैटिन शब्द "कार्डो" (Cardo) का अर्थ है — कब्ज़ा (Hinge), जिस पर दरवाज़ा टिका रहता है और घूमता है। ये चार सद्गुण "कार्डिनल" इसलिए कहलाते हैं, क्योंकि पूरा नैतिक जीवन इन्हीं पर टिका है; बाक़ी सद्गुण इन्हीं पर आश्रित हैं। प्लेटो के अनुसार "सद्गुणों की एकता" भी है — कोई व्यक्ति एक कार्डिनल सद्गुण तब तक पूरी तरह नहीं पा सकता, जब तक उसके पास बाक़ी तीन भी न हों।

संयम अति से रक्षा करने वाली शक्ति है — आत्म-नियंत्रण और विरोधी तत्वों में सामंजस्य; **साहस** न्याय करने का पराक्रम है, जो न्याय के रास्ते की बाधाएँ हटाता है; **प्रज्ञा** कर्म का सही कारण है, जो बाक़ी सभी सद्गुणों का मार्गदर्शन करती है; और **न्याय** वह सद्गुण है जो व्यक्ति को आत्म-संगत बनाता है और समाज को भीतर से सामंजस्यपूर्ण। प्लेटो कहते हैं — "समाज व्यक्ति का ही बड़ा रूप है" (Society is the individual writ large)।

प्लेटो — आत्मा, सद्गुण और राज्य



New India Education by Omkar Sir
चित्र 6.5: प्लेटो — आत्मा, सद्गुण और राज्य

प्लेटो का शासन-दर्शन (प्रकार्यवादी दृष्टि): प्लेटो का न्यायपूर्ण राज्य एक **स्वस्थ शरीर** जैसा है, जिसमें हर अंग पूरे शरीर के लाभ के लिए काम करता है और पूरा शरीर हर अंग को लाभ देता है। पूरे का अस्तित्व इस पर निर्भर है कि हर भाग अपना काम ठीक से करे। **न्याय का अर्थ है — अपनी भूमिका पर टिके रहना, अपना काम करना और दूसरों के काम में दखल न देना।** प्लेटो के अनुसार समाज में तीन चीज़ें न्याय लाती हैं — **टीमवर्क** (दार्शनिक राजा, रक्षक और जनता), **समानता** (निष्पक्षता की धारणा के अनुसार सबसे समान व्यवहार) और **नेतृत्व** (प्रबुद्ध राजा द्वारा शासन)।

☀️ आधुनिक प्रशासनिक उदाहरण

राजस्थान के धौलपुर ज़िले में पुलिस अधीक्षक के रूप में IPS मृदुल कच्छावा द्वारा डकैत गिरोहों के विरुद्ध चलाया गया सघन अभियान — प्लेटो के 'साहस' (Courage) व 'न्याय' (Justice) सद्गुणों का व्यावहारिक उदाहरण माना जा सकता है।

3.3 दार्शनिक राजा (Philosopher King)

🔍 आसान परिभाषा: दार्शनिक राजा (Philosopher King)

📖 **परिभाषा:** प्लेटो के अनुसार आदर्श राज्य पर शासन उन्हीं लोगों को करना चाहिए, जो सत्य के सच्चे ज्ञानी (दार्शनिक) हों — क्योंकि सत्ता की चाह रखने वाला व्यक्ति अक्सर सत्ता का दुरुपयोग करता है, जबकि ज्ञान की चाह रखने वाला व्यक्ति समाज-हित को प्राथमिकता देता है।

💡 **आसान भाषा में:** जैसे किसी अस्पताल का सबसे अच्छा प्रशासक वही डॉक्टर हो सकता है, जिसे इलाज की गहरी समझ हो, न कि कोई ऐसा व्यक्ति जो सिर्फ पद पाना चाहता हो — ठीक वैसे ही राज्य का शासक भी वही होना चाहिए जिसे 'अच्छे शासन' की गहरी समझ व सच्ची निष्ठा हो। 🏠 **उदाहरण:** भारतीय परंपरा में सम्राट अशोक (बौद्ध धम्म-नीति द्वारा शासन) व राजा भोज जैसे उदाहरण, तथा वैश्विक इतिहास में रोमन

सम्राट-दार्शनिक मार्कस ऑरिलियस को अक्सर 'दार्शनिक राजा' की अवधारणा के करीब माना जाता है — गीता में भी कृष्ण, अर्जुन को ज्ञान देकर एक 'दार्शनिक-मार्गदर्शक' की भूमिका निभाते हैं।

- ◆ भारतीय संदर्भ में यह विचार लोकतांत्रिक ढाँचे में इस रूप में झलकता है कि नीति-निर्माण के केंद्र में सिविल सेवकों व विशेषज्ञों (Technocrats) की गहरी विषय-समझ का समावेश हो — जैसे नीति आयोग में विशेषज्ञों की भागीदारी।

3.4 शुभ की अवधारणा (Concept of the Good)

- ◆ प्लेटो के लिए 'शुभ' (The Good) सर्वोच्च व परम आदर्श था — ठीक वैसे ही जैसे सूर्य सबको प्रकाश देता है, 'शुभ' का विचार ही ज्ञान व सत्य को संभव बनाता है।
- ◆ कई विद्वान इसे 'शुभ = ईश्वर' (Good = God) के समकक्ष मानते हैं, जो हर वस्तु के अस्तित्व व मूल्य का अंतिम स्रोत है।
- ◆ भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) में समग्र (Holistic) व चरित्र-निर्माण पर केंद्रित शिक्षा का जो विचार है, तथा राजस्थान के टोंक ज़िले में स्थित बनस्थली विद्यापीठ (महिलाओं का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय) की 'पंचमुखी शिक्षा' (शारीरिक, व्यावहारिक, कलात्मक, नैतिक व बौद्धिक विकास) जैसी अवधारणाएँ — दोनों ही प्लेटो के 'शुभ की ओर उन्मुख शिक्षा' के विचार से मेल खाती प्रतीत होती हैं।

क्या दार्शनिक राजा आज व्यावहारिक है? इसकी सीमाएँ हैं — जनता की सीधी भागीदारी की कमी और अभिजात्यवाद (Elitism) की आलोचना; पर इसकी वर्तमान प्रासंगिकता भी है — नीति-निर्माण में विशेषज्ञता और ज्ञान की भूमिका। दोनों पक्षों को साथ देखने से ही संतुलित समझ बनती है।

4. अरस्तू (Aristotle, 384-322 ईसा पूर्व) — नीतिशास्त्र के जनक

अरस्तू प्राचीन यूनान के दार्शनिक थे — वे प्लेटो के शिष्य और सिकंदर महान (Alexander the Great) के गुरु थे, और उन्होंने एथेंस में 'लाइसियम' (Lyceum) नाम का अपना विद्यालय स्थापित किया। प्लेटो के शिष्य होते हुए भी उन्होंने नीतिशास्त्र को एक स्वतंत्र, व्यवस्थित विषय के रूप में स्थापित किया — इसीलिए उन्हें 'नीतिशास्त्र का जनक' (Father of Ethics) कहा जाता है। उनकी सबसे प्रसिद्ध कृति 'निकोमेकियन एथिक्स' (Nicomachean Ethics) है।

नीतिशास्त्र — एक व्यावहारिक विज्ञान: अरस्तू की नैतिक दृष्टि उनकी कृति "निकोमेकियन एथिक्स" में मिलती है। उन्होंने प्लेटो के जन्मजात ज्ञान और आदर्श जगत के सिद्धांत को अस्वीकार किया और कहा कि **सारा ज्ञान इंद्रिय-अनुभव से शुरू होता है**। उनके लिए नैतिक सिद्धांत हमारी रोज़मर्रा की गतिविधियों में ही छिपे हैं और उनके सावधान अध्ययन से ही खोजे जा सकते हैं; इसलिए कोई भी नैतिक सिद्धांत मानव-मनोविज्ञान और रोज़मर्रा के जीवन की वास्तविकताओं पर आधारित होना चाहिए। अरस्तू ने प्लेटो के आदर्श जगत की जगह **प्रज्ञा** को रखा, और उसे दो भागों में बाँटा — **सैद्धांतिक प्रज्ञा और व्यावहारिक प्रज्ञा**।

प्रकार्य-तर्क (Function Argument): अरस्तू मानते थे कि ब्रह्मांड में हर चीज़ का एक कार्य है, और **सद्गुण वह गुण है जो किसी वस्तु को अपना कार्य अच्छी तरह करने में सक्षम बनाए**। जैसे चाकू का कार्य काटना है, तो अच्छा चाकू वह है जो अच्छी तरह काटे। मनुष्य की विशिष्ट क्षमता है — **तर्क**; इसलिए मनुष्य का लक्ष्य अपनी तर्क-शक्ति का विकास है, और **प्रज्ञा सर्वोच्च सद्गुण है**।

वस्तु / व्यक्ति	उसका सद्गुण (उत्कृष्टता)
दौड़ का घोड़ा	तेज़ दौड़ना
चाकू	धारदार होना
सैनिक	बहादुर होना
प्रशासक	नियमों का पालन और निष्पक्ष निर्णय
किसान	अच्छी फ़सल उगाना
हर मनुष्य	मित्रता की क्षमता, नागरिक भागीदारी, सौंदर्य-बोध, बौद्धिक जिज्ञासा

आलोचना: इसी "हर चीज़ का एक कार्य है" वाले पदानुक्रमित विचार से अरस्तू ने **दास-प्रथा** का भी समर्थन किया था, क्योंकि वे ग़ैर-यूनानियों को यूनानियों से कम तर्कशील मानते थे — यह उनके दर्शन की एक गंभीर सीमा है।

4.1 चरम शुभ / यूडाइमोनिया (Summum Bonum / Eudaimonia)

आसान परिभाषा: यूडाइमोनिया (Eudaimonia)

 **परिभाषा:** अरस्तू के अनुसार मनुष्य के जीवन का अंतिम व सर्वोच्च लक्ष्य 'यूडाइमोनिया' है — जिसे अक्सर 'सुख' (Happiness) के रूप में अनुवादित किया जाता है, पर इसका असली अर्थ है 'सद्गुण-पूर्ण जीवन जीने से प्राप्त गहरा सार्थक कल्याण/फलना-फूलना' (Flourishing)।

 **आसान भाषा में:** जैसे एक क्षणिक खुशी (जैसे स्वादिष्ट भोजन खाना) और एक जीवन-भर की सार्थकता (जैसे एक अच्छा माता-पिता, अच्छा नागरिक या अच्छा अधिकारी बनना) में फर्क है — यूडाइमोनिया दूसरे प्रकार की गहरी, टिकाऊ सार्थकता है, न कि क्षणिक सुख।  **उदाहरण:** नासिक ज़िले में कोविड-काल में अनाथ हुए बच्चों की मदद के लिए लगभग 40 अधिकारियों ने मिलकर आगे आकर सहयोग किया — यह किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, बल्कि कर्तव्य-भावना से उपजी गहरी सार्थकता (यूडाइमोनिया) का उदाहरण है, जो किसी भी पदोन्नति या पुरस्कार से कहीं बड़ी संतुष्टि देती है।

4.2 स्वर्णिम मध्य मार्ग (Golden Mean/Doctrine of the Mean)

अरस्तू के अनुसार हर सद्गुण दो अतियों (अति-न्यूनता व अति-अधिकता) के बीच का संतुलित मध्य-बिंदु है। यह अरस्तू की सबसे महत्वपूर्ण और सबसे अधिक चर्चित अवधारणा है।

अति-न्यूनता (Deficiency)	स्वर्णिम मध्य (Golden Mean = सद्गुण)	अति-अधिकता (Excess)
कायरता (Cowardice)	साहस (Courage)	दुःसाहस (Rashness)
कंजूसी (Stinginess)	उदारता (Generosity)	अपव्यय (Extravagance)
हीनभावना/अति-विनम्रता (Undue Humility)	स्वाभिमान (Proper Pride)	अहंकार (Vanity)
सुस्ती/निष्क्रियता (Sloth)	महत्वाकांक्षा का संतुलन (Right Ambition)	अति-महत्वाकांक्षा (Over-ambition)

सद्गुण आदत से बनते हैं: अरस्तू के अनुसार हम नैतिक सद्गुण मुख्य रूप से आदत और अभ्यास से सीखते हैं, केवल तर्क या उपदेश से नहीं। एक उदार व्यक्ति कभी-कभार नहीं, बल्कि नियमित रूप से उदार होता है। सद्गुण दो प्रकार के हैं — नैतिक सद्गुण, जो कर्म से व्यक्त होते हैं, और बौद्धिक सद्गुण, जो चिंतन में व्यक्त होते हैं। स्वर्णिम मध्य को सही ढंग से लागू करने का अर्थ है — सही काम, सही व्यक्ति के प्रति, सही मात्रा में, सही उद्देश्य से और सही समय पर करना।

“ कोई भी क्रोधित हो सकता है — यह आसान है; पर सही व्यक्ति पर, सही मात्रा में, सही समय पर, सही उद्देश्य के लिए और सही ढंग से क्रोधित होना — यह आसान नहीं। (Anyone can become angry — that is easy. But to be angry with the right person, to the right degree, at the right time, for the right purpose, and in the right way — this is not easy.) ”
— अरस्तू (Aristotle), भावार्थ — निकोमेकियन एथिक्स

व्यावहारिक प्रज्ञा (Phronesis) — प्रशासक का सबसे बड़ा गुण: व्यावहारिक प्रज्ञा का अर्थ है — किसी भी परिस्थिति में क्या आवश्यक है, इसे परख पाना; इसमें यह जानना भी शामिल है कि कब नियम का पालन करना है और कब उससे हटना है। इसके लिए ज्ञान, अनुभव, भावनात्मक संवेदनशीलता, सूक्ष्म दृष्टि और तर्क — सब चाहिए। अरस्तू स्वयं कहते हैं कि व्यावहारिक विज्ञानों में कोई सटीक सूत्र नहीं होते; हर मामले को अलग से, विकसित सद्गुण और व्यावहारिक प्रज्ञा के साथ देखना होता है।

अरस्तू का स्वर्णिम मध्य — दो अतियों के बीच सद्गुण

कमी (Deficiency)	सद्गुण	अधिकता (Excess)
कायरता	साहस	दुस्साहस
कंजूसी	उदारता	फिजूलखर्ची
संवेदनहीनता	आत्म-संयम	भोग-लिप्सा
आलस्य	महत्वाकांक्षा	लोभ
निर्लज्जता	विनम्रता	अति-संकोच

चित्र 6.6: अरस्तू का स्वर्णिम मध्य — दो अतियों के बीच सद्गुण

☀ प्रशासनिक उदाहरण — 'स्वर्णिम मध्य' का व्यावहारिक अनुप्रयोग

टी.एन. शेषन (पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त) के नाम से प्रचलित एक कथन है कि 'कठोरता व लचीलेपन के बीच सही संतुलन ही एक प्रभावी प्रशासक की पहचान है' — यह भावना अरस्तू के 'स्वर्णिम मध्य' सिद्धांत को दर्शाती है। इसका एक ठोस उदाहरण निर्भया कांड (2012) की जाँच अधिकारी रहीं IPS छाया शर्मा हैं, जिन्होंने संवेदनशीलता (पीड़िता व परिवार के प्रति सहानुभूति) और दृढ़ता (त्वरित व सख्त जाँच) — दोनों गुणों को एक साथ संतुलित करके एक मिसाल कायम की।

4.3 वितरणात्मक बनाम सुधारात्मक न्याय (Distributive vs Corrective Justice)

न्याय का प्रकार	अर्थ	प्रशासनिक उदाहरण
वितरणात्मक न्याय (Distributive Justice)	समाज के संसाधनों/लाभों का व्यक्ति के योगदान/आवश्यकता के अनुपात में वितरण।	आरक्षण नीति, सब्सिडी वितरण, कल्याणकारी योजनाएँ — जो आनुपातिक समानता पर आधारित हैं।
सुधारात्मक न्याय (Corrective/Rectificatory)	जब किसी के साथ गलत/नुकसान हो जाए, तो उसकी भरपाई कर संतुलन बहाल करना।	मुआवज़ा/क्षतिपूर्ति (Compensation) व्यवस्था, न्यायालय द्वारा हर्जाना, आपदा-राहत।

न्याय का प्रकार	अर्थ	प्रशासनिक उदाहरण
Justice)		

अरस्तू के न्याय का मूल सूत्र: न्याय का अर्थ है लोगों को वही देना जिसके वे पात्र हैं — न कम, न ज्यादा। इसका मुख्य तत्व है — **समान मामलों में समान व्यवहार, और असमान मामलों में असमान व्यवहार** (Treat like cases alike and unlike cases unlike)। अरस्तू ने न्याय के और भी रूप बताए — **राजनीतिक न्याय** (सत्ता सद्गुणी लोगों में बँटें, और संबंध क़ानून से नियंत्रित हों) और **व्यक्तिगत न्याय** (वह नैतिक प्रवृत्ति जो व्यक्ति को न्यायपूर्ण कर्म करने और न्याय चाहने योग्य बनाती है)। उन्होंने न्याय को **सर्वोच्च सद्गुण** माना। भारत में आरक्षण और लक्षित कल्याणकारी योजनाएँ "असमान मामलों में असमान व्यवहार" के इसी सिद्धांत का आधुनिक रूप हैं।

4.4 अन्य महत्वपूर्ण अवधारणाएँ

◆ **लोगोस, पैथोस, एथोस (Logos, Pathos, Ethos)** — अरस्तू के अनुसार किसी को प्रभावी ढंग से समझाने के तीन साधन: तर्क (Logos), भावना (Pathos) व वक्ता की विश्वसनीयता (Ethos) — प्रशासनिक जन-संवाद व नीति-प्रचार में तीनों का संतुलित उपयोग ज़रूरी है।

◆ **इच्छाशक्ति की स्वतंत्रता (Freedom of Will)** — अरस्तू का मानना था कि मनुष्य अपने कार्यों के लिए वास्तव में ज़िम्मेदार है क्योंकि उसके पास चयन (Choice) की स्वतंत्रता है — यह उसी 'ज्ञान ही सद्गुण है' वाले सुकरात के दृष्टिकोण की एक आलोचनात्मक समीक्षा भी है (देखें अनुभाग 2.4 — 'इच्छाशक्ति की कमज़ोरी' / Akrasia)।

स्वर्णिम मध्य गणितीय औसत नहीं: यह मध्य-बिंदु किसी गणितीय औसत (ठीक बीचोबीच) जैसा नहीं, बल्कि **परिस्थिति और व्यक्ति के सापेक्ष** है — अरस्तू स्वयं इसे "सापेक्ष मध्य" (Relative Mean) कहते थे, "निरपेक्ष मध्य" (Absolute Mean) नहीं।

5. परिणामवाद — हेडोनिज़्म, बेन्थम एवं मिल का उपयोगितावाद

5.1 सुखवाद (Hedonism) — मूल अवधारणा

सुखवाद यह मानता है कि सुख (Pleasure) ही जीवन का परम लक्ष्य है और दुःख से बचना ही एकमात्र नैतिक कसौटी है। यह विचारधारा भारतीय दर्शन में चार्वाक दर्शन ('ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' — कर्ज़ लेकर भी घी पियो) में तथा पश्चिम में एपिक्युरस के दर्शन में मिलती है।

सुखवाद का प्रकार	अर्थ
मनोवैज्ञानिक सुखवाद (Psychological Hedonism)	एक तथ्यात्मक दावा कि मनुष्य स्वभाव से हमेशा सुख की ही खोज करता है (चाहे वह माने या न माने)।
नैतिक सुखवाद (Ethical Hedonism)	एक मूल्यात्मक दावा कि मनुष्य को सुख की खोज करनी 'चाहिए' — यही नैतिक रूप से सही है।

🔍 आसान परिभाषा: सुखवादी विरोधाभास (Paradox of Hedonism) एवं सुख-चक्र (Hedonic Treadmill)

📘 **परिभाषा:** सुख को सीधे लक्ष्य बनाकर पीछा करने पर वह अक्सर हाथ से फिसल जाता है (Paradox), और जब मिल भी जाता है तो कुछ समय बाद उसी स्तर का सुख फीका पड़ने लगता है, जिससे इंसान और ज़्यादा की चाह में लगातार दौड़ता रहता है (Treadmill)।

💡 **आसान भाषा में:** जैसे कोई नया फ़ोन खरीदने पर शुरू में बहुत खुशी होती है, पर कुछ हफ्तों बाद वही खुशी सामान्य लगने लगती है और मन एक और नए, बेहतर फ़ोन की चाह करने लगता है — व्यक्ति कितनी भी दौड़ ले, संतुष्टि का स्तर वहीं का वहीं रहता है, जैसे ट्रेडमिल पर दौड़ना।
🏠 **उदाहरण:** यह अवधारणा बताती है कि सिर्फ़ भौतिक/आर्थिक संवृद्धि (जैसे सिर्फ़ GDP बढ़ाना) दीर्घकाल में जन-कल्याण की गारंटी नहीं देती — इसीलिए भूतान का 'सकल राष्ट्रीय प्रसन्नता' (Gross National Happiness) सूचकांक जैसे वैकल्पिक मॉडल महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

5.2 जेरेमी बेन्थम (Jeremy Bentham, 1748-1832) — उपयोगितावाद के जनक

जेरेमी बेन्थम इंग्लैंड के दार्शनिक और क़ानून-सुधारक थे, जिनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'नैतिकता और विधि-निर्माण के सिद्धांतों का परिचय' (An Introduction to the Principles of Morals and Legislation, 1789) है। बेन्थम ने 'उपयोगितावाद' (Utilitarianism) को एक व्यवस्थित सिद्धांत का रूप दिया — उनका मूल सूत्र था: "अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख" (The Greatest Happiness of the Greatest Number)। यह एक मात्रात्मक (Quantitative) दृष्टिकोण था — यानी सुख को नापा/तौला जा सकता है।

बेन्थम के नैतिक दर्शन की तीन विशेषताएँ: (1) अधिकतम सुख का सिद्धांत, (2) सार्वभौमिक स्वार्थवाद, और (3) अपने हितों का दूसरों के हितों से कृत्रिम जुड़ाव (क़ानून और संस्थाओं द्वारा)। 'सार्वभौमिक स्वार्थवाद' का अर्थ है कि हर मनुष्य स्वभाव से अपना ही सुख चाहता है; इसलिए बेन्थम मानते थे कि क़ानून और संस्थाएँ ऐसा ढाँचा बनाएँ कि व्यक्ति जब अपना हित साधे तो उसी से दूसरों का हित भी हो जाए — जैसे समय पर कर भरने वाले को छूट और कर-चोरी करने वाले को दंड। बेकन और लॉक के अनुभववाद से प्रभावित बेन्थम मानते थे कि सारा ज्ञान संवेदना से आता है, और संवेदना या तो सुख है या दुःख।

“ प्रकृति ने मानव-जाति को दो सर्वोच्च स्वामियों के शासन में रखा है — दुःख और सुख। यही तय करते हैं कि हमें क्या करना चाहिए और हम क्या करेंगे। (Nature has placed mankind under the governance of two sovereign masters, pain and pleasure.) ” — **जेरेमी बेन्थम (Jeremy Bentham), 1789**

घटती सीमांत उपयोगिता: सुख एक सापेक्ष अवधारणा है — एक ही वस्तु का मूल्य अलग-अलग लोगों के लिए अलग होता है। जैसे एक लाख रुपये एक सामान्य व्यक्ति के लिए अच्छी-खासी रकम हैं, एक भिखारी के लिए जीवन बदल देने वाली बहुत बड़ी रकम, और एक बड़े उद्योगपति के लिए लगभग कुछ भी नहीं। इसी को 'घटती सीमांत उपयोगिता' (Diminishing Marginal Utility) कहते हैं — यानी किसी के पास कोई वस्तु जितनी अधिक होती जाती है, उसकी हर अगली इकाई से मिलने वाला अतिरिक्त सुख उतना ही घटता जाता है। इसीलिए कल्याणकारी योजनाओं में गरीब तक पहुँचा एक रुपया अमीर तक पहुँचे एक रुपये से कहीं अधिक "उपयोगिता" पैदा करता है। बेन्थम ने यह भी कहा कि **पीड़ा को कम करना, धन-निर्माण की योजनाओं से अधिक तात्कालिक प्राथमिकता** है।

बेन्थम और कानून: बेन्थम के लिए **विधायक समाज का डॉक्टर** है — जो चिकित्सक व्यक्ति के शरीर के लिए है, वही विधायक जनता के राजनीतिक शरीर के लिए। उनके अनुसार "जनहित" कोई रहस्यमय वस्तु नहीं, बल्कि **व्यक्तिगत हितों का योग** है। कानून के दंड और पुरस्कार लोगों को ऐसे कर्मों के लिए प्रेरित कर सकते हैं जो समुदाय के लिए लाभकारी हों। बेन्थम का मानना था कि कर्म की उपयोगिता उसकी **प्रेरणा (Motive)** से **स्वतंत्र** है — कोई "अच्छी" या "बुरी" प्रेरणा नहीं होती, केवल परिणाम मायने रखते हैं; इसलिए उनके अनुसार सभी सुख गुणात्मक रूप से समान हैं — **"मात्रा समान हो, तो पुशपिन (एक साधारण खेल) भी उतना ही अच्छा है जितनी कविता।"** उन्होंने प्राकृतिक कानून की अस्पष्टता की आलोचना करते हुए **विधिक प्रत्यक्षवाद (Legal Positivism)** का प्रारंभिक रूप दिया — अधिकार संप्रभु सत्ता द्वारा परिभाषित और संरक्षित होने चाहिए।

बेन्थम का सुखवादी परिकलन (Hedonistic/Felific Calculus) — 7 कारक

कारक	अर्थ
तीव्रता (Intensity)	सुख कितना गहरा/तीव्र है।
अवधि (Duration)	सुख कितने समय तक रहेगा।
निश्चितता (Certainty)	सुख मिलने की कितनी संभावना है।
निकटता (Propinquity/Nearness)	सुख कितनी जल्दी मिलेगा।
फलदायकता (Fecundity)	यह सुख आगे और सुख उत्पन्न करेगा या नहीं।
शुद्धता (Purity)	इस सुख के साथ कितना कम दुःख जुड़ा है।
विस्तार (Extent)	यह सुख कितने लोगों तक पहुँचेगा।

बेन्थम का सुख-परिकलन — सात कसौटियाँ

किसी कर्म का कुल सुख



चित्र 6.7: बेन्थम का सुख-परिकलन — सात कसौटियाँ

बेन्थम की 4 स्वीकृतियाँ/अनुशासन-स्रोत (4 Sanctions) — यानी वे दबाव, जिनके कारण मनुष्य दुःख के डर या सुख की आशा से सही काम करता है और गलत से बचता है:

- ◆ भौतिक (Physical) — प्राकृतिक परिणाम, जैसे ज़्यादा खाने से बीमार पड़ना।
- ◆ राजनीतिक/कानूनी (Political/Legal) — राज्य द्वारा दंड/पुरस्कार, जैसे कानून तोड़ने पर सज़ा।
- ◆ नैतिक/सामाजिक (Moral/Social/Popular) — समाज की स्वीकृति/अस्वीकृति, जैसे सामाजिक बहिष्कार।
- ◆ धार्मिक (Religious) — ईश्वरीय पुरस्कार/दंड की मान्यता।

5.3 दंड का नैतिक औचित्य — दंड के तीन सिद्धांत

दंड को **"नैतिक नियम के जानबूझकर उल्लंघन का न्यायपूर्ण प्रतिफल"** कहा गया है। जैसे अच्छे कर्म को प्रशंसा या पुरस्कार मिलना चाहिए, वैसे ही बुरे कर्म को दंड; यदि अपराधी को दंड न मिले, तो समाज में सामंजस्य, समता और एकरूपता नहीं रहेगी और नैतिक नियम केवल "सलाह" बनकर रह जाएँगे। दंड के तीन प्रमुख सिद्धांत हैं:

सिद्धांत	मूल विचार	प्रमुख प्रतिपादक	आज का रूप
निवारक (Deterrent)	दंड इसलिए नहीं कि गलत हुआ, बल्कि इसलिए कि आगे गलत न हो — "तुम्हें भेड़ चुराने के लिए नहीं, बल्कि इसलिए दंड दिया जा रहा है कि भेड़ें चोरी न हों।" लक्ष्य — अपराध-दर घटाकर	बेन्थम	कठोर दंड से अपराध रोकना, जुर्माना

सिद्धांत	मूल विचार	प्रमुख प्रतिपादक	आज का रूप
	अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख।		
प्रतिशोधात्मक (Retributive)	दंड इसलिए क्योंकि अपराधी उसका पात्र है, और किसी कारण से नहीं; दंड बुरे कर्म का "नकारात्मक पुरस्कार" है। लक्ष्य — न्याय।	कांट (Kant), हीगल (Hegel)	अपराध के अनुपात में सज़ा
सुधारात्मक (Reformative)	दंड अपराधी को सुधारने के लिए; अपराध अज्ञान या मानसिक-सामाजिक विकृति का परिणाम है, इसलिए उपचार चाहिए। प्लेटो — "राज्य अपराधी के लिए माता-पिता जैसा है; दुष्टता मन का रोग है; दंड नैतिक औषधि है।"	प्लेटो	खुली जेलें, परिवीक्षा, सामुदायिक सेवा का दंड

बेन्थम का दंड-सिद्धांत: उनके अनुसार दंड अपराध से हुई हानि के अनुपात में हो और दूसरों को वही अपराध करने से रोकने के लिए पर्याप्त हो। भारत की नई भारतीय न्याय संहिता, 2023 में छोटे अपराधों के लिए सामुदायिक सेवा को दंड के रूप में जोड़ना सुधारात्मक दृष्टि का उदाहरण है, जबकि कठोर दंड के प्रावधान निवारक दृष्टि के।

दंड के सिद्धांत — एक नज़र में

निवारक / प्रतिशोधात्मक	बनाम	सुधारात्मक
अपराध रोकना / न्याय देना	प्रश्न	अपराधी को बदलना
अपराध पर केंद्रित	दृष्टि	अपराधी पर केंद्रित
बेन्थम / कांट, हीगल	विचारक	प्लेटो, गांधी
कठोर सज़ा, जुर्माना	उदाहरण	खुली जेल, सामुदायिक सेवा

चित्र 6.8: दंड के सिद्धांत — एक नज़र में

☀ प्रशासनिक उदाहरण

प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (DBT), सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS), स्वच्छ भारत मिशन तथा उज्ज्वला योजना — ये सभी नीतियाँ बेन्थम के 'अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख' के सिद्धांत पर ही आधारित हैं, जहाँ सीमित संसाधनों से अधिकतम जनसंख्या को लाभ पहुँचाने का प्रयास किया जाता है।

5.4 जॉन स्टुअर्ट मिल (J.S. Mill, 1806-1873) — गुणात्मक उपयोगितावाद

जॉन स्टुअर्ट मिल इंग्लैंड के दार्शनिक, अर्थशास्त्री और सांसद थे, जिनकी प्रसिद्ध पुस्तकें 'ऑन लिबर्टी' (On Liberty, 1859), 'यूटिलिटेरियनिज़्म' (Utilitarianism, 1863) और 'द सब्जेक्शन ऑफ़ विमेन' (The Subjection of Women, 1869) हैं। मिल, बेन्थम के ही अनुयायी थे, पर उन्होंने बेन्थम की एक बड़ी कमी को सुधारा — मिल के अनुसार सारे सुख एक-जैसे (सिर्फ मात्रा में अलग) नहीं होते, बल्कि गुणवत्ता (Quality) में भी भिन्न होते हैं — बौद्धिक/मानसिक सुख, शारीरिक सुख से श्रेष्ठ माने जाने चाहिए।

☀ प्रामाणिक कथन

"एक असंतुष्ट सुकरात होना, एक संतुष्ट मूर्ख होने से बेहतर है" (It is better to be Socrates dissatisfied than a fool satisfied) — मिल का यह कथन दर्शाता है कि उच्च बौद्धिक/नैतिक सुख, निम्न शारीरिक सुख से कहीं ज़्यादा मूल्यवान है, भले ही वह कम 'संतोषजनक' महसूस हो।

मिल — केवल उपयोगितावादी नहीं: मिल का पालन-पोषण उनके पिता **जेम्स मिल** ने कठोर बेन्थमवादी सिद्धांतों पर किया था। वे उपयोगितावादी होने के साथ-साथ उदारवादी, लोकतंत्रवादी, बहुलवादी, समाजवादी, नारीवादी और प्रकृतिवादी भी थे। उन्होंने सुखों को दो प्रकार में बाँटा — **उच्च सुख** (मुख्यतः बौद्धिक — उपन्यास या अच्छी कविता लिखना) और **निम्न सुख** (मुख्यतः शारीरिक — धूम्रपान, मद्यपान जैसे इंद्रिय-सुख)। इसीलिए उन्होंने कहा — **"संतुष्ट सुअर होने से असंतुष्ट मनुष्य होना बेहतर है।"** मिल के अनुसार यदि कोई व्यक्ति अपना सुख छोड़कर या स्वयं कष्ट सहकर सबकी बड़ी भलाई में सीधा योगदान देता है, तो ऐसा त्याग भी उचित और सराहनीय है — जैसे कोई स्वास्थ्यकर्मी महामारी में अपनी सुविधा छोड़कर दूसरों की सेवा करे।

मिल का सिद्धांत	अर्थ	आज का रूप
हानि का सिद्धांत (Harm Principle)	व्यक्ति जो चाहे करने को स्वतंत्र है, जब तक वह दूसरों को हानि न पहुँचाए; राज्य केवल दूसरों को हानि से बचाने के लिए ही व्यक्ति की स्वतंत्रता सीमित कर सकता है।	अनुच्छेद 19 की युक्तिसंगत सीमाएँ
मिल का प्रकृतिवाद (Naturalism)	मनुष्य पूरी तरह प्रकृति का हिस्सा है; पृथ्वी सबकी है और हर प्रजाति को जीने का अधिकार है — अपने लोभ के लिए दूसरी प्रजातियों को हानि नहीं पहुँचाई	पर्यावरण-नैतिकता का दार्शनिक आधार

मिल का सिद्धांत	अर्थ	आज का रूप
	जा सकती।	
परार्थवादी सुखवाद	व्यक्ति का कर्म समाज को हानि न पहुँचाए; जो समाज के लिए अच्छा है, वही व्यक्ति के लिए अच्छा है।	सामूहिक कल्याण
अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता	अधिकांश विचार न पूरी तरह सही होते हैं, न पूरी तरह गलत; स्वतंत्र अभिव्यक्ति से सत्य खोजा जाता है; गलत विचार का खंडन भी सत्य की समझ बढ़ाता है; अल्पसंख्यक विचारों का दमन न हो; प्रतिनिधि सरकार के लिए नीति-बहस ज़रूरी है।	स्वतंत्र प्रेस, सार्वजनिक परामर्श

मिल और जवाबदेही: मिल ने सार्वजनिक जाँच और बहस को सुशासन के लिए अनिवार्य माना — निरंतर सार्वजनिक संवाद और आलोचना (ऊर्ध्वाधर जवाबदेही) अधिकारियों के नैतिक आचरण को प्रोत्साहित करती है और **"बहुमत की तानाशाही"** को रोकती है — यानी ऐसी स्थिति, जिसमें बहुमत अपनी संख्या के बल पर अल्पसंख्यकों या असहमत लोगों की स्वतंत्रता को कुचल दे।

◆ मिल ने बेन्थम की 4 स्वीकृतियों में एक पाँचवीं जोड़ी — अंतःकरण/विवेक (Conscience/Internal Sanction) — यानी किसी गलत काम पर अपनी ही आत्मा द्वारा महसूस किया गया अपराध-बोध, जो बाहरी दंड से भी ज़्यादा प्रभावी नियंत्रक हो सकता है।

कर्म-उपयोगितावाद (Act Utilitarianism)	नियम-उपयोगितावाद (Rule Utilitarianism)
◆ हर एक कार्य को अलग-अलग परखा जाता है — 'इस विशेष स्थिति में' सबसे ज़्यादा सुख किससे मिलेगा।	◆ यह देखा जाता है कि कौन-सा 'सामान्य नियम' अपनाने से समाज को दीर्घकाल में सबसे ज़्यादा लाभ होगा।
◆ लचीला, पर कभी-कभी नियम तोड़ने को भी उचित ठहरा सकता है।	◆ अधिक स्थिर — कानून व आचार-संहिता का आधार यही दृष्टिकोण है।

5.5 उपयोगितावाद का प्रयोग और उसकी आलोचना

प्रयोग: व्यक्तिगत स्तर पर उपयोगितावाद स्वतंत्रता, जोखिम उठाने की क्षमता और नवाचार को बढ़ावा देता है; अर्थव्यवस्था में पेशे के चुनाव की स्वतंत्रता, लाभ-अधिकतमीकरण और दक्षता इसी पर टिके हैं; और सरकारी स्तर पर अधिकांश नीतियाँ — **आयुष्मान भारत, उज्ज्वला योजना, प्रधानमंत्री जन-धन योजना** — बड़ी आबादी का अधिकतम भला करने के लक्ष्य पर बनती हैं।

क्र.	उपयोगितावाद की प्रमुख आलोचनाएँ
1	यह अक्सर शारीरिक सुख की खोज बन जाता है, जो मनुष्य का "निम्न शुभ" है, "परम शुभ" नहीं।
2	यह लोगों को भौतिकवादी, स्वार्थी और उपभोक्तावादी बना सकता है, जिससे सांठगांठ वाला पूँजीवाद और भ्रष्टाचार पनपते हैं।
3	"अधिकतम लोगों का अधिकतम भला" बहुसंख्यकवाद, अल्पसंख्यकों की उपेक्षा और "सबसे योग्य की उत्तरजीविता" की ओर ले जा सकता है — इसी आलोचना से रॉल्स का न्याय-सिद्धांत निकला।
4	यदि कोई हिंसक कर्म भी अधिकतम लोगों को सुख दे, तो उपयोगितावाद उसे नैतिक ठहरा सकता है — जैसे एक लोकप्रिय फ़िल्मी खलनायक का तर्क कि "आधी आबादी मिटाकर बाक़ी आधी को सुखी बनाया जाए" — यह विकृत उपयोगितावाद है।
5	इसकी लागत-लाभ गणना अक्सर तात्कालिक लाभ देखती है, दीर्घकालिक नहीं — जलवायु परिवर्तन इसका उदाहरण है।
6	आपात स्थिति में सभी परिणामों का अनुमान लगाकर सुख-दुःख की गणना करने का समय ही नहीं होता।

निष्कर्ष: इन कमियों के बावजूद उपयोगितावाद व्यक्ति के लिए स्वतंत्रता और समाज के लिए "अधिकतम लोगों के अधिकतम भले" की दृष्टि से आज भी प्रासंगिक है। आधुनिक दार्शनिक **पीटर सिंगर (Peter Singer)** — ऑस्ट्रेलिया के समकालीन दार्शनिक (जन्म 1946), जो पशु-अधिकारों और वैश्विक गरीबी पर अपने लेखन के लिए प्रसिद्ध हैं — ने उपयोगितावाद को **"प्रभावी परोपकार" (Effective Altruism)** के रूप में आगे बढ़ाया — उनके अनुसार यदि हम तुलनीय नैतिक महत्व की कोई चीज़ त्यागे बिना किसी की पीड़ा रोक सकते हैं, तो ऐसा करना हमारा नैतिक दायित्व है; और सहायता करते समय **हर रुपये से अधिकतम भलाई** का लक्ष्य रखना चाहिए। यह "दिल और दिमाग" दोनों को जोड़ता है — यानी दूसरों की पीड़ा देखकर मदद करने की भावना (दिल) के साथ यह सोच-विचार (दिमाग) भी कि मदद कहाँ और कैसे सबसे अधिक असर करेगी।

📖 कहानी: "टैंकर किस गाँव जाए?" — सूखे में सुख का गणित और न्याय

जैसलमेर ज़िले में भीषण सूखा था। उपखंड अधिकारी निधि (काल्पनिक नाम) के पास केवल 12 पानी के टैंकर थे और 30 गाँवों की माँग। एक बड़ा गाँव (3,000 की आबादी) सड़क के किनारे था, जहाँ टैंकर दिन में तीन फेरे लगा सकते थे। दूर रेत के धोरों के पार 18 छोटी ढाणियाँ थीं — कुल आबादी 900, जहाँ एक टैंकर दिन में मुश्किल से एक फेरा लगा पाता। स्थानीय नेता का दबाव था — "बड़े गाँव को प्राथमिकता दीजिए, वहाँ वोट भी ज़्यादा हैं और शिकायतें भी।"

निधि ने पहले बेन्थम की तरह गणना की — प्रति टैंकर-फेरे से कितने लोगों को पानी मिलेगा? गणित साफ़ था: बड़े गाँव में हर फेरा अधिक लोगों तक पहुँचेगा। पर फिर उन्होंने घटती सीमांत उपयोगिता के बारे में सोचा — बड़े गाँव में एक पुराना कुआँ और एक टांका अब भी कुछ पानी दे रहे थे, जबकि ढाणियों में पशु मरने लगे थे और बच्चे दस्त से बीमार थे। वहाँ पानी की एक बाल्टी का "सुख" बड़े गाँव की दस बाल्टियों से अधिक था।

फिर उन्होंने अरस्तू का सूत्र याद किया — "समान मामलों में समान व्यवहार, असमान मामलों में असमान।" ढाणियों की ज़रूरत और असुरक्षा अलग थी, इसलिए उनके साथ समान नहीं, बल्कि ज़रूरत के अनुसार व्यवहार होना चाहिए। और रॉल्स का अंतर-सिद्धांत भी यही कहता था — असमानता तभी स्वीकार्य है, जब वह सबसे वंचित के हित में हो।

निधि ने एक खुली बैठक में मानदंड घोषित किए — प्रति व्यक्ति न्यूनतम पानी (पीने और पशुओं के लिए), पानी के दूसरे स्रोतों की उपलब्धता, और बीमारी का जोखिम। इनके आधार पर 7 टैंकर ढाणियों के लिए तय हुए (रात में भरकर सुबह जल्दी निकलने वाले फेरों के साथ), और 5 टैंकर बड़े गाँव के लिए, जहाँ साथ में पुराने कुएँ की सफ़ाई और एक अस्थायी पाइपलाइन का काम भी शुरू हुआ। हर टैंकर का जीपीएस से पता और फेरों की सूची पंचायत भवन पर लगाई गई। शिकायतें थमीं, पशु-मृत्यु रुकी, और बड़े गाँव के लोगों ने भी माना — "ढाणी वालों की हालत हमसे खराब थी।"

🔑 इस कहानी से सीख: उपयोगितावाद का "अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख" एक उपयोगी शुरुआत है, पर घटती सीमांत उपयोगिता, अरस्तू का वितरणात्मक न्याय और रॉल्स का अंतर-सिद्धांत उसे न्यायपूर्ण बनाते हैं। पारदर्शी मानदंड और खुली घोषणा राजनीतिक दबाव से बचने का सबसे अच्छा तरीका है।

उपयोगितावाद की सबसे बड़ी आलोचना यह है कि यह "अल्पसंख्यक या अकेले व्यक्ति के अधिकारों" की अनदेखी कर सकता है — जैसे "बहुमत के लिए एक निर्दोष को सज़ा देना" भी जायज़ ठहरा सकता है। यही आलोचना आगे कांट और रॉल्स के सिद्धांतों का आधार बनती है।

6. एपिक्युरवाद, स्टोइसिज़्म एवं कन्फ्यूशीवाद

6.1 एपिक्युरवाद (Epicureanism)

यूनानी दार्शनिक एपिक्युरस (Epicurus, 341–270 ईसा पूर्व), जिन्होंने एथेंस में 'द गार्डन' (The Garden) नाम का विद्यालय चलाया, ने सुख की खोज को ही जीवन का लक्ष्य बताया, पर उनका 'सुख' शारीरिक भोग-विलास नहीं, बल्कि शांत, संयमित व पीड़ा-रहित जीवन (Ataraxia — मानसिक शांति) था। वे अति-भोग के सख्त विरोधी थे और सादगी को ही असली सुख का मार्ग मानते थे।

◆ एपिक्युरस के अनुसार डर (विशेषकर मृत्यु का डर) ही मनुष्य के दुःख का सबसे बड़ा कारण है — तर्कसंगत समझ से इस डर को दूर किया जा सकता है।

एपिक्युरस का सुख — शांति का सुख: एपिक्युरस सुख को ही एकमात्र परम शुभ और दुःख को एकमात्र अशुभ मानते थे, पर उनके लिए **मन के परिष्कृत सुख** शरीर के स्थूल सुखों से श्रेष्ठ थे — क्योंकि वे अधिक मात्रा में और अधिक टिकाऊ सुख देते हैं। उनके अनुसार सबसे ऊँचा सुख **शांति (Tranquillity)** है, जो अधूरी इच्छाओं को हटाकर मिलता है — और इसका तरीका है सबसे सरल इच्छाओं को छोड़कर बाक़ी सब छोड़ देना, जिन्हें कोई भी, बिना धन के भी, आसानी से पूरा कर सके।

एपिक्युरस के लिए न्याय भी केवल एक **सुविधाजनक व्यवस्था** था, जो आपसी हानि को रोकती है। तो फिर अन्याय क्यों न करें, जब पकड़े न जाएँ? उनका उत्तर था — **पकड़े जाने का निरंतर डर** खुद एक दर्दनाक चिंता है। एपिक्युरस ने मित्रता को भी बहुत ऊँचा स्थान दिया — एपिक्युरियन अपने गर्मजोशी भरे संबंधों के लिए प्रसिद्ध थे — पर वे मित्रता को भी इसलिए अच्छा मानते थे क्योंकि वह सुख देती है।

◆ प्रशासनिक/विधिक संदर्भ — महाराष्ट्र का जादू-टोना विरोधी अधिनियम, 2013 (Anti-Superstition and Black Magic Act) और राजस्थान डायन-प्रताड़ना निवारण अधिनियम, 2015 जैसे कानून — जो झाड़ू-फूँक, नरबलि और 'डायन' बताकर किसी को सताने जैसी प्रथाओं को अपराध घोषित करते हैं — अंधविश्वास व अताकिक भय के विरुद्ध ठीक उसी तर्कसंगत सोच को बढ़ावा देते हैं, जिसकी वकालत एपिक्युरस ने की थी।

6.2 स्टोइसिज़्म (Stoicism)

ज़ेनो (Zeno of Citium, लगभग 334–262 ईसा पूर्व — साइप्रस के किटियम नगर में जन्मे और एथेंस में पढ़ाने वाले दार्शनिक) द्वारा स्थापित यह विचारधारा — जिसका नाम एथेंस के उस 'स्टोआ' (खंभों वाला बरामदा) से पड़ा जहाँ ज़ेनो पढ़ाते थे — कहती है कि सद्गुण-पूर्ण जीवन ही सच्चा सुख है, और मनुष्य को उन चीज़ों की चिंता नहीं करनी चाहिए जो उसके नियंत्रण में नहीं हैं — केवल अपने कर्मों, विचारों व प्रतिक्रियाओं पर नियंत्रण रखना चाहिए।

🔍 आसान परिभाषा: विश्व-नागरिकता (Cosmopolitanism)

📖 **परिभाषा:** स्टोइक दार्शनिकों (जैसे रोमन सम्राट मार्कस ऑरेलियस, 121–180 ई., जिनकी डायरी-जैसी पुस्तक 'मेडिटेशंस' (Meditations) स्टोइक विचारों का प्रसिद्ध संग्रह है) के अनुसार सभी मनुष्य एक ही 'वैश्विक समुदाय' (Cosmopolis) के नागरिक हैं — जाति, धर्म, राष्ट्र की सीमाओं से ऊपर उठकर सबको समान मानना चाहिए।

💡 **आसान भाषा में:** जैसे एक बड़े परिवार में सभी सदस्य अलग-अलग स्वभाव के होते हुए भी एक-दूसरे को अपना मानते हैं — स्टोइक दर्शन

पूरी मानवता को ही एक ऐसा 'परिवार' मानने की सीख देता है। 🏠 **उदाहरण:** संयुक्त राष्ट्र (UN) के मानवाधिकार सिद्धांत तथा भारत के 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (सारा विश्व एक परिवार है) के आदर्श — दोनों ही स्टोइक 'विश्व-नागरिकता' की भावना से गहराई से मेल खाते हैं।

◆ भावनाओं पर नियंत्रण (Apatheia) — स्टोइक दर्शन के अनुसार क्रोध, भय, ईर्ष्या जैसी अनियंत्रित भावनाओं पर काबू पाना ही सच्ची स्वतंत्रता है — एक शांत, संतुलित प्रशासक इसी सिद्धांत का उदाहरण है।

स्टोइक दर्शन की गहराई: "स्टोइक" का आम अर्थ है वह व्यक्ति, जो उन दुःखों और कष्टों से विचलित न हो, जो बाक़ी मानवता को परेशान करते हैं। अरस्तू मानते थे कि केवल कुछ लोग ही तर्क कर सकते हैं, पर स्टोइकों के अनुसार **सभी मनुष्यों में तर्क की क्षमता** है, इसलिए सभी सद्गुण और प्रज्ञा पा सकते हैं। प्लेटो ने कहा था कि भावनाओं और इच्छाओं को तर्क से नियंत्रित करना चाहिए; स्टोइक इससे आगे गए — उन्होंने भावनाओं को अच्छे-बुरे के निर्णय का आधार ही अस्वीकार कर दिया। बुद्धिमान व्यक्ति **"किसी चीज़ को चाहने"** और **"उसे अच्छा मानने"** का अंतर समझता है; शारीरिक पीड़ा उसे भी होती है, पर वह जानता है कि यह उसके तर्कशील स्वरूप को नहीं छूती।

स्टोइक दर्शन की सबसे बड़ी विरासत यह विश्वास है कि **सभी मनुष्यों में तर्क की साझा क्षमता** है — और इसी से उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि एक **सार्वभौमिक नैतिक नियम** है, जिसने नैतिक सापेक्षवाद को अस्वीकार करने की परंपरा को मज़बूत किया। धन, यश और सफलता अच्छे हैं, पर क्षणिक; केवल **तर्क और सद्गुण से प्राप्त उत्कृष्ट मानसिक अवस्था** ही गहराई से अच्छी है। हम एक बड़े प्राकृतिक तंत्र का छोटा-सा हिस्सा हैं — जो बदला जा सकता है उसे बदलो, और जो नहीं बदला जा सकता उसे स्वीकार करो; बाहरी चीज़ों को नियंत्रित करने की कोशिश केवल निराशा देती है।

स्टोइक "नियंत्रण का द्विभाजन" — प्रशासक के लिए

मेरे वश में	स्टोइक	मेरे वश में नहीं
मेरी प्रतिक्रिया, मेरा निर्णय	विचार	दूसरों की राय, आलोचना
मेरी मेहनत, ईमानदारी	कर्म	तबादला, पदोन्नति
क्रोध पर संयम	भावना	घटनाएँ, आपदाएँ
पूरी निष्ठा से करो	रवैया	शांति से स्वीकारो

चित्र 6.9: स्टोइक "नियंत्रण का द्विभाजन" — प्रशासक के लिए

“ तुम्हारा अधिकार अपने मन पर है, बाहरी घटनाओं पर नहीं — यह समझ लो, तुम्हें शक्ति मिल जाएगी। (You have power over your mind — not outside events. Realize this, and you will find strength.) ” — मार्कस ऑरिलियस (Marcus Aurelius), भावार्थ — मेडिटेशंस

स्टोइक दार्शनिक **एपिक्टेटस (Epictetus)** (लगभग 50–135 ई.) — जो जन्म से दास थे और बाद में स्वतंत्र होकर प्रसिद्ध स्टोइक शिक्षक बने — ने सिखाया कि **मनुष्य घटनाओं से नहीं, बल्कि घटनाओं के बारे में अपनी धारणाओं से विचलित होता है** — यानी मायने यह रखता है कि हम घटना पर कैसी प्रतिक्रिया देते हैं। यही आज की **भावनात्मक बुद्धिमत्ता** में आत्म-नियंत्रण का आधार है, और गीता के 'स्थितप्रज्ञ' (वह व्यक्ति जिसकी बुद्धि सुख-दुःख, लाभ-हानि और मान-अपमान में भी स्थिर रहती है) से गहरा मेल खाता है।

6.3 कन्फ्यूशीवाद (Confucianism) — पूर्वी नैतिकता का आधार

चीनी विचारक कन्फ्यूशियस (Confucius, लगभग 551-479 ईसा पूर्व) ने पारिवारिक व सामाजिक संबंधों में सामंजस्य पर आधारित एक व्यापक नैतिक-दर्शन विकसित किया, जिसका पूर्वी एशिया की प्रशासनिक व सामाजिक संस्कृति पर आज भी गहरा प्रभाव है।

सिद्धांत	अर्थ
रेन (Ren)	परोपकार, मानवता, करुणा — सर्वोच्च गुण, दूसरों के प्रति सहानुभूति।
ली (Li)	शिष्टाचार, अनुष्ठान, उचित सामाजिक व्यवहार-संहिता।
शियाओ (Xiao)	माता-पिता व पूर्वजों के प्रति श्रद्धा व आज्ञाकारिता (पितृ-भक्ति)।
यी (Yi)	धार्मिकता/औचित्य — निजी लाभ की बजाय सही काम करने का नैतिक साहस।
झी (Zhi)	व्यावहारिक बुद्धि/विवेक — सही व गलत में भेद करने की क्षमता।

पूर्व और भारत का संवाद: कन्फ्यूशीवाद के "ली" (शिष्टाचार-संहिता) की तुलना भारतीय सिविल सेवा आचरण नियमों से, और "रेन" (करुणा) की तुलना गीता के "सर्वभूतहिते रताः" (सभी प्राणियों के हित में रत रहना) से की जा सकती है।

6.4 मध्यकालीन और आरंभिक आधुनिक चिंतक — ऑगस्टीन, एक्विनास, देकार्त

संत ऑगस्टीन (Saint Augustine) — स्वतंत्र इच्छा: संत ऑगस्टीन (354–430 ई.) उत्तरी अफ्रीका के हिप्पो नगर के ईसाई धर्मशास्त्री थे, जिनकी प्रसिद्ध पुस्तकें 'कन्फेशन्स' (Confessions) और 'द सिटी ऑफ़ गॉड' (The City of God) हैं। उनके अनुसार ईश्वर ने मनुष्य को

तर्कशील प्राणी बनाया, जो अच्छे-बुरे में भेद कर सकता है, और उसे चुनने तथा कर्म करने की पूर्ण स्वतंत्रता दी। इसलिए यदि कोई गलत करता है, तो ज़िम्मेदारी उसकी है, ईश्वर की नहीं।

थॉमस एक्विनास (Thomas Aquinas) — सात सद्गुण और न्यायपूर्ण युद्ध: थॉमस एक्विनास (1225–1274 ई.) इटली के ईसाई दार्शनिक-धर्मशास्त्री थे, जिनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'सुम्मा थियोलॉजिका' (Summa Theologica) है; वे प्लेटो और विशेषकर अरस्तू के विचारों को ईसाई धर्म से जोड़ने वाले सद्गुण-नीतिशास्त्री थे। उन्होंने चार कार्डिनल सद्गुणों (प्रज्ञा, संयम, साहस, न्याय) में तीन धार्मिक सद्गुण जोड़े — **आस्था, आशा और परोपकार (Faith, Hope, Charity)** — जो मिलकर ईसाई धर्म के सात सद्गुण बने। उनका **न्यायपूर्ण युद्ध सिद्धांत (Just War Theory)** कहता है — (1) युद्ध की घोषणा वैध सत्ता करे; (2) युद्ध का कारण न्यायसंगत हो — जैसे आक्रमण से रक्षा या अत्याचार रोकना; (3) उद्देश्य सही हो — भलाई बढ़ाना और बुराई रोकना (बाद की परंपरा ने "अंतिम विकल्प" और "आनुपातिकता" की शर्तें भी जोड़ीं)। ये सिद्धांत आज भी अंतरराष्ट्रीय कानून और बल-प्रयोग की नैतिकता में काम आते हैं।

रेने देकार्त (René Descartes): फ्रांस के दार्शनिक और गणितज्ञ देकार्त (1596–1650) को 'आधुनिक पाश्चात्य दर्शन का जनक' कहा जाता है। वे "मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ" (Cogito, ergo sum) कथन के लिए प्रसिद्ध हैं — यानी हर बात पर संदेह किया जा सकता है, पर यह निश्चित है कि संदेह करने वाला 'मैं' मौजूद है। देकार्त के अनुसार **तर्क** ही यह खोजने के लिए पर्याप्त है कि हमें किन अच्छाइयों की खोज करनी चाहिए, और **सद्गुण उस सही तर्क में है जो हमारे कर्मों का मार्गदर्शन करे।**

7. सामाजिक अनुबंध के विचारक — मैकियावेली, हॉब्स, लॉक एवं रूसो

अनुबंधवाद (Contractarianism) के अनुसार मानव आचरण तब नैतिक है, जब वह पक्षों के बीच हुए अनुबंध के नियमों के अनुरूप हो। हर समाज किसी न किसी — लिखित या अलिखित — अनुबंध पर टिका है। जब यह अनुबंध **राज्य और नागरिकों** के बीच होता है, तो इसे **सामाजिक अनुबंध** कहते हैं: लोग कानून का पालन करते हैं और राज्य लोगों की सेवा करता है। हॉब्स, लॉक और रूसो — तीनों के विचारों में अंतर है, पर तीनों राज्य और नागरिक के संबंध पर केंद्रित हैं और इस संबंध की नींव **मानव-स्वभाव और मानव-अधिकारों** की व्याख्या पर रखते हैं। इनसे पहले मैकियावेली ने राजनीति को नैतिकता से अलग करके देखा था।

7.1 निकोलो मैकियावेली (Niccolò Machiavelli) — यथार्थवादी राजनीति

निकोलो मैकियावेली (1469–1527) इटली के फ्लोरेंस नगर के राजनयिक और राजनीतिक विचारक थे, जिन्हें आधुनिक राजनीति-विज्ञान का जनक भी कहा जाता है। अपनी पुस्तक **"द प्रिंस" (The Prince)** (1513 में लिखी गई) में मैकियावेली ने राजनीति का एक कठोर व्यावहारिक दृष्टिकोण रखा। उनके लिए सामाजिक-राजनीतिक जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य **सत्ता पाना और उसे बनाए रखना** है; नैतिक नियम केवल सत्ता पाने और बचाने के व्यावहारिक नियम हैं। इसलिए जब भी लाभ हो, अनुबंध तोड़ देना चाहिए, क्योंकि (मानव-स्वभाव दुष्ट होने के कारण) दूसरा भी तोड़ेगा। मैकियावेली पहले बड़े चिंतक थे, जिन्होंने कर्मों को **केवल उनके परिणामों** से परखा — कोई कर्म इसलिए अच्छा नहीं कि ईश्वर उसका आदेश देता है या वह सद्गुण से निकलता है, बल्कि इसलिए कि उससे सत्ता मिलती और बनी रहती है। इसे **यथार्थवादी राजनीति (Realpolitik)** कहते हैं — विचारधारा या नैतिकता के बजाय परिस्थितियों पर आधारित राजनीति। उनके अनुसार शासक के लिए राज्य की स्थिरता और सुरक्षा सर्वोपरि है, भले उसके लिए पारंपरिक नैतिकता के विरुद्ध जाना पड़े — **"साध्य, साधन को उचित ठहराता है।"**

7.2 थॉमस हॉब्स (Thomas Hobbes) — प्राकृतिक अवस्था और "लेवियाथन"

इंग्लैंड के दार्शनिक थॉमस हॉब्स (1588–1679) अपनी पुस्तक 'लेवियाथन' (Leviathan, 1651) के लिए प्रसिद्ध हैं। हॉब्स हिंसा से घृणा करते थे — उन्होंने इंग्लैंड का लगभग एक दशक लंबा गृहयुद्ध देखा था, जिसके दौरान राजा **चार्ल्स प्रथम** का 1649 में सिर कलम कर दिया गया। युद्ध से बचने की इच्छा ने ही उनके नैतिक और राजनीतिक चिंतन को दिशा दी। उनका दर्शन चार चरणों में चलता है:

◆ **प्राकृतिक अवस्था युद्ध की अवस्था है:** बिना नैतिकता और राज्य के संसार में न कला होगी, न साहित्य, न व्यापार — केवल निरंतर भय और हिंसक मृत्यु का खतरा; और मनुष्य का जीवन **"एकाकी, दरिद्र, घृणित, पाशविक और अल्प"** (solitary, poor, nasty, brutish, and short) होगा। कारण — मनुष्य की असीम इच्छाएँ, संसाधनों की कमी, लोगों की लगभग समान शक्ति और प्रबल स्वार्थ।

◆ **प्राकृतिक अधिकार (Right of Nature):** प्राकृतिक अवस्था में कोई पूर्व-निर्धारित नैतिक नियम नहीं; आत्म-रक्षा के लिए बल और छल — सब उचित है; केवल दूसरों की शक्ति हमें सीमित करती है।

◆ **प्राकृतिक नियम (Law of Nature):** तर्कशील प्राणी होने के कारण मनुष्य युद्ध से बचना और शांति चाहते हैं — दूसरों से वैसा व्यवहार न करो जैसा तुम अपने साथ नहीं चाहते। **नैतिकता = शांति के वे नियम, जिन पर हर तर्कशील स्वार्थी व्यक्ति सहमत होगा।**

◆ **सामाजिक अनुबंध और लेवियाथन:** स्वार्थ ही अंततः नैतिकता को उचित ठहराता है; पर समझौते का पालन तभी तर्कसंगत है जब कोई **बाध्यकारी शक्ति** उसे लागू करे। इसलिए हॉब्स ने एक **"लेवियाथन"** — असीम शक्तियों वाले मज़बूत राज्य — का समर्थन किया, जिसके विरुद्ध लोग विद्रोह नहीं कर सकते; लोगों के अधिकार सशर्त होंगे, निरपेक्ष नहीं।

हॉब्स का मनोवैज्ञानिक स्वार्थवाद: हॉब्स के अनुसार मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी है; समाज प्राकृतिक प्रेम से नहीं, बल्कि **स्वार्थ और भय** से बना है। नैतिक आचरण केवल ऐसी सरकार के माध्यम से संभव है, जो सही कर्मों को पुरस्कृत और गलत को दंडित कर सके। **आलोचना:** (1) अनुबंध-सिद्धांत यह तो बताता है कि "हम" नैतिक क्यों बनें, पर यह नहीं कि "मैं" क्यों बनूँ — यदि पकड़े न जाऊँ, तो "मुफ्तखोर" (Free Rider) क्यों न बनूँ? (2) **कैदी की दुविधा (Prisoner's Dilemma)** — ऐसी स्थिति जिसमें दो लोग एक-दूसरे पर भरोसा करके सहयोग करें तो दोनों का भला हो, पर अविश्वास के कारण दोनों अपने-अपने स्वार्थ में धोखा देना चुनते हैं और दोनों का नुकसान होता है; इस असहयोग को रोकने के लिए दंड देने वाली एजेंसियाँ चाहिए, पर वे एजेंसियाँ स्वयं भ्रष्ट हो सकती हैं; (3) हॉब्स का मानव-स्वभाव का नकारात्मक चित्र उनके समय की परिस्थितियों से प्रभावित था, जबकि निःस्वार्थ सेवा के अनगिनत उदाहरण हैं; (4) असीम शक्ति वाला राज्य आज की **सीमित सरकार** की अवधारणा के विपरीत है और शोषक बन सकता है।

7.3 जॉन लॉक (John Locke) — प्राकृतिक अधिकार और सीमित सरकार

टैबुला रासा (Tabula Rasa) — कोरी स्लेट: इंग्लैंड के दार्शनिक जॉन लॉक (1632–1704) अपनी पुस्तक 'शासन पर दो निबंध' (Two Treatises of Government, 1689) के लिए प्रसिद्ध हैं और उन्हें 'उदारवाद का जनक' कहा जाता है। अरस्तू की तरह अनुभववादी (यह मानने वाले कि ज्ञान इंद्रियों के अनुभव से आता है) लॉक मानते थे कि हर मनुष्य एक **खाली, लचीले मन** के साथ जन्म लेता है; उसके चरित्र का हर पहलू समाज में रहते हुए इंद्रियों से देखा, अनुभव किया और सीखा जाता है। यह "प्रकृति बनाम परवरिश" की बहस में परवरिश का पक्ष लेता है और स्वतंत्र इच्छा की अवधारणा को आधार देता है।

प्राकृतिक (अविच्छेद्य) अधिकार: लॉक के अनुसार व्यक्ति की संपत्ति उसके अपने शरीर और आत्मा से शुरू होती है; जब कोई व्यक्ति प्रकृति की साझा देन में अपना श्रम मिलाता है (जैसे पेड़ पर चढ़कर सेब तोड़ना), तो वह उसकी संपत्ति बन जाती है। लॉक ने सामाजिक अनुबंध में **प्राकृतिक अधिकारों** को जोड़ा — राज्य का काम नागरिकों के तीन प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा है: **जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति**। इसीलिए उन्हें "शास्त्रीय उदारवादी" कहा जाता है। अमेरिकी स्वतंत्रता घोषणा (1776) ने इन्हें थोड़े बदलाव के साथ अपनाया — **जीवन, स्वतंत्रता और सुख की खोज**।

सहिष्णुता और धर्म: लॉक के लिए सहिष्णुता का अर्थ है — किसी चीज़ (दूसरी आस्था, नस्ल या विचार) से मूलभूत असहमति रखते हुए भी उसे अस्तित्व में रहने देना। चूंकि आत्मा व्यक्ति की अपनी है, कोई राजनीतिक सत्ता यह तय नहीं कर सकती कि लोग किस धर्म को मानें। **सीमित और उत्तरदायी सरकार:** राजतंत्र के विशाल "लेवियाथन" के विपरीत लॉक ने छोटे आकार और सीमित दायरे वाली सरकार का समर्थन किया — लोग अपने **कुछ (सब नहीं)** अधिकार सरकार को सौंपते हैं, बदले में क़ानून की सुरक्षा पाते हैं। सरकार एक "तटस्थ न्यायाधीश" हो, जिसे व्यक्ति के जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप का अधिकार नहीं। सबसे क्रांतिकारी विचार — हर वैध सत्ता को **जनता की सहमति** चाहिए; सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी है, जनता सरकार के प्रति नहीं; और यदि जनता अपनी सरकार को अस्वीकार करे, तो उसे बदलने का अधिकार है — **क्रांति का अधिकार**।

7.4 ज्यॉन्-जैक रूसो (Jean-Jacques Rousseau) — सामान्य इच्छा

जिनेवा (स्विट्ज़रलैंड) में जन्मे और फ्रांस में सक्रिय दार्शनिक ज्यॉन्-जैक रूसो (1712–1778) के विचारों ने फ्रांसीसी क्रांति (1789) को गहराई से प्रभावित किया। रूसो के विचार उनकी कृतियों "असमानता की उत्पत्ति पर विमर्श" (1755) और "सामाजिक अनुबंध" (1762) में मिलते हैं। उनके प्रमुख विचार हैं:

◆ **प्राकृतिक अच्छाई:** मनुष्य अपनी प्राकृतिक अवस्था में स्वभाव से अच्छा और नैतिक है — उसमें करुणा, सहानुभूति और न्याय का स्वाभाविक बोध है; **समाज और सभ्यता** उसे भ्रष्ट करते हैं। "प्राकृतिक मनुष्य" आत्म-रक्षा और दया से निर्देशित होता है; समाज की संस्थाएँ और असमानताएँ उसकी इस मासूमियत को बिगाड़ती हैं।

◆ **सामान्य इच्छा (General Will):** पूरे समुदाय की सामूहिक इच्छा, जो सामान्य हित को दर्शाती है। सच्ची नैतिकता तब है जब व्यक्ति अपनी निजी इच्छा से ऊपर सामान्य इच्छा को रखे। इसका अर्थ है — **संप्रभुता जनता में निहित है**; क़ानून जनता के लिए है, जनता क़ानून के लिए नहीं; जो क़ानून सामान्य इच्छा के अनुरूप न हो, उसे समाप्त कर देना चाहिए।

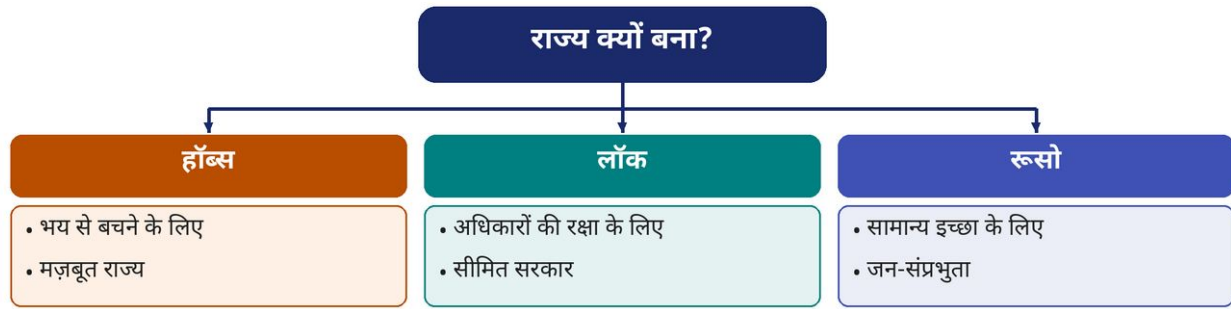
◆ **नैतिक स्वतंत्रता और समानता:** व्यक्ति सच्चे अर्थ में स्वतंत्र तब है, जब वह उन नियमों और क़ानूनों के निर्माण में भाग लेता है जो उसके जीवन को नियंत्रित करते हैं — यह केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता से अलग, **सहभागी स्वतंत्रता** है।

◆ **दो प्रकार का आत्म-प्रेम: "आमूर द स्वा" (Amour de soi) —** स्वाभाविक आत्म-प्रेम या आत्म-रक्षा, जो नैतिक रूप से निर्दोष है; और **"आमूर प्रोप्रे" (Amour propre) —** दूसरों से तुलना और मान्यता की चाह से निकला आत्म-प्रेम, जो प्रतिस्पर्धा, असमानता और संघर्ष जैसी सामाजिक बुराइयों का स्रोत है।

◆ **भावनाएँ नैतिकता का आधार:** कई प्रबोधन-विचारकों (Enlightenment — 17वीं-18वीं सदी का यूरोपीय बौद्धिक आंदोलन, जिसने तर्क और विज्ञान को सबसे ऊपर रखा) के विपरीत रूसो के लिए **करुणा, दया और सहानुभूति** नैतिक आचरण के मूल स्रोत हैं; तर्क की भूमिका है, पर भावनाएँ नैतिक चुनाव को आकार देती हैं। इसलिए शिक्षा को बच्चे की स्वाभाविक नैतिक भावनाओं का पोषण करना चाहिए, न कि बाहरी नियम थोपने चाहिए।

आधार	हॉब्स	लॉक	रूसो
मानव-स्वभाव	स्वार्थी, भयभीत	तर्कशील, अधिकार-संपन्न	स्वभाव से अच्छा, करुणामय
प्राकृतिक अवस्था	सबका सबसे युद्ध	शांत, पर अधिकार असुरक्षित	सरल, सुखी; समाज ने बिगाड़ा
अनुबंध क्यों?	सुरक्षा और शांति के लिए	जीवन, स्वतंत्रता, संपत्ति की रक्षा के लिए	स्वतंत्रता और समानता के साथ सामूहिक जीवन के लिए
राज्य का रूप	असीम शक्ति वाला लेवियाथन	सीमित, उत्तरदायी, तटस्थ न्यायाधीश	सामान्य इच्छा पर आधारित, जन-संप्रभुता
विद्रोह का अधिकार	नहीं	हाँ — क्रांति का अधिकार	सामान्य इच्छा के विरुद्ध क़ानून समाप्त हो
आधुनिक प्रभाव	मज़बूत क़ानून-व्यवस्था	मौलिक अधिकार, उदार लोकतंत्र	प्रत्यक्ष लोकतंत्र, जन-भागीदारी

सामाजिक अनुबंध — तीन दृष्टियाँ



चित्र 6.10: सामाजिक अनुबंध — तीन दृष्टियाँ

प्रशासनिक अर्थ: भारतीय संविधान में तीनों की छाया है — क़ानून-व्यवस्था बनाए रखने की राज्य की शक्ति (हॉब्स), मौलिक अधिकार और विधि का शासन (लॉक), और प्रस्तावना का **"हम, भारत के लोग"** तथा पंचायती राज जैसी सहभागी संस्थाएँ (रूसो)। सामाजिक अनुबंध सिद्धांत की खूबी यह है कि यह नैतिकता के रहस्य को हटाता है, मानता है कि हम स्वार्थी हैं (जो यथार्थवादी है) और बताता है कि नैतिक बनना हमारे अपने हित में है।

8. इमैनुएल कांट (Immanuel Kant, 1724-1804) — कर्तव्यवाद के जनक

जर्मन दार्शनिक इमैनुएल कांट को 'कर्तव्यवाद' (Deontology) का जनक माना जाता है — उन्होंने अपना पूरा जीवन प्रशा (Prussia) के कोनिग्सबर्ग नगर में बिताया। उनकी सबसे प्रसिद्ध नैतिक कृति 'ग्राउंडवर्क ऑफ़ द मेटाफिज़िक्स ऑफ़ मोरल्स' (Groundwork of the Metaphysics of Morals, 1785) है; इसके अलावा 'क्रिटिक ऑफ़ प्योर रीज़न' (1781) और 'क्रिटिक ऑफ़ प्रैक्टिकल रीज़न' (1788) भी उनकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। कांट के लिए किसी कार्य की नैतिकता उसके परिणाम से नहीं, बल्कि उसके पीछे की 'नीयत' (Motive/Will) से तय होती है — यह उपयोगितावाद के बिल्कुल विपरीत दृष्टिकोण है।

8.1 शुभ-संकल्प (Good Will)

कांट के अनुसार इस संसार में सिर्फ़ एक ही चीज़ बिना शर्त 'अच्छी' है — शुभ-संकल्प (Good Will)। कोई कार्य सिर्फ़ तभी सच में नैतिक है जब वह परिणाम, नाम या फ़ायदे की चाहत से नहीं, बल्कि शुद्ध कर्तव्य-भाव से किया जाए। जैसा इस अध्याय की शुरुआत में हरियाणा कैडर के IAS अधिकारी अशोक खेमका के उदाहरण से देखा गया, उसी तरह अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन द्वारा वर्षों से बिना किसी प्रचार-प्रसार की चाह के शिक्षा-क्षेत्र में किया जा रहा कार्य भी 'शुभ-संकल्प' का एक उदाहरण माना जा सकता है — जहाँ कार्य स्वयं में कर्तव्य-भाव से प्रेरित है, न कि प्रसिद्धि की चाह से।

कांट के अनुसार ज्ञान कैसे मिलता है: कांट ने **अनुभववाद** (इंद्रिय-अनुभव, जिसे उपयोगितावादी महत्व देते थे) और **तर्कवाद** (तर्क, जिसे सद्गुण-नीतिशास्त्री और अनुबंधवादी महत्व देते थे) — दोनों को जोड़ा। इंद्रिय-अनुभव पहला चरण है, जो आँकड़े देता है; तर्क दूसरा चरण है, जो उन आँकड़ों को अवधारणाओं में व्यवस्थित करता है। उन्होंने संसार को दो भागों में बाँटा — **इंद्रियातीत जगत्** (मानव-पहुँच से परे) और **अनुभवजन्य जगत्** (जिसमें हम रहते हैं), और कहा कि तर्क केवल अनुभवजन्य जगत् पर लागू होता है।

नैतिक क्यों बनें? कांट के लिए मनुष्य सामाजिक और तर्कशील प्राणी है; हर समाज के कुछ न्यूनतम नियम होते हैं, जिनका पालन सबका नैतिक कर्तव्य है। पर क्या सभी सामाजिक नियम मानने चाहिए? कांट कहते हैं — नहीं; केवल उन्हीं नियमों का पालन अनिवार्य है जो **बिना शर्त**, हर परिस्थिति में मानने योग्य हों और अपने आप में साध्य हों — इन्हीं को उन्होंने **निरपेक्ष आज्ञा** कहा। नैतिक नियम **शुद्ध, स्वतंत्र और तर्कशील इच्छा** से निकलता है, जो स्व-निर्धारित और स्व-विधायी है — व्यक्ति तब स्वतंत्र है जब वह दूसरों की नहीं, अपनी इच्छा से बँधा हो। कांट के अनुसार नैतिक जीवन में भावना का स्थान नहीं; वे केवल एक भावना को पवित्र मानते हैं — **नैतिक नियम के प्रति सम्मान (Reverence)**।

8.2 निरपेक्ष आज्ञा (Categorical Imperative)

आसान परिभाषा: निरपेक्ष आज्ञा (Categorical Imperative) — तीन रूप

परिभाषा: कांट के अनुसार एक सच्चा नैतिक नियम 'निरपेक्ष' (Categorical) होता है — यानी वह हर परिस्थिति में, बिना किसी शर्त के, सब पर समान रूप से लागू होता है (न कि 'अगर तुम चाहो तो' वाला सशर्त/Hypothetical नियम)।

आसान भाषा में: जैसे एक अस्पताल में 'हाथ धोना अनिवार्य है' का नियम किसी एक डॉक्टर या मरीज़ के लिए नहीं, बल्कि बिना अपवाद सभी के लिए हो — ठीक वैसे ही कांट कहते हैं कि 'झूठ मत बोलो' जैसा नैतिक नियम भी हर परिस्थिति में, हर व्यक्ति पर, बिना अपवाद लागू होना चाहिए। **उदाहरण:** सिविल सेवा आचार-संहिता (Code of Conduct) के नियम — जैसे 'रिश्वत मत लो' — किसी विशेष परिस्थिति में छूट नहीं देते, चाहे नीयत कितनी भी 'अच्छी' क्यों न हो; यह निरपेक्ष आज्ञा का ही प्रशासनिक रूप है।

रूप (Formulation)	अर्थ
सार्वभौमिकता का सिद्धांत (Universality)	"केवल उसी नियम पर कार्य करो, जिसे तुम एक साथ यह भी चाहो कि वह एक सार्वभौमिक नियम बन जाए।" — यानी अपने कार्य को हमेशा एक ऐसा नियम मानकर परखो जो सबके लिए लागू हो सके।
मानवता को साध्य मानो, साधन नहीं (Humanity as an End)	किसी भी मनुष्य का उपयोग कभी केवल 'साधन' (Means) के रूप में मत करो, बल्कि उसे हमेशा अपने-आप में एक 'साध्य/लक्ष्य' (End in Itself) मानकर सम्मान दो।

रूप (Formulation)	अर्थ
स्वायत्तता का सिद्धांत (Autonomy)	हर तर्कशील प्राणी अपने-आप में नियम बनाने वाला (Self-Legislator) है — नैतिक नियम बाहर से थोपे नहीं जाते, बल्कि तर्कशील विवेक से स्वयं अपनाए जाते हैं।

कांट की निरपेक्ष आज्ञा — तीन रूप

निरपेक्ष आज्ञा

सार्वभौमिकता वही नियम अपनाओ जो सबके लिए नियम बन सके	मानवता मनुष्य को साध्य मानो, केवल साधन नहीं	साध्यों का राज्य स्वयं पर नैतिक नियम लागू करने वाले स्वायत्त सदस्य बनो
---	---	--

चित्र 6.11: कांट की निरपेक्ष आज्ञा — तीन रूप

8.3 तीन अभिगृहीत (Three Postulates)

कांट ने अनुसार नैतिकता को व्यावहारिक रूप से सार्थक बनाने के लिए तीन बातों को अनिवार्य रूप से मान लेना (Postulate) पड़ता है — भले ही इन्हें तर्क से सीधे सिद्ध न किया जा सके: (1) इच्छा की स्वतंत्रता (Freedom of Will) — बिना स्वतंत्रता के नैतिक ज़िम्मेदारी संभव ही नहीं; (2) आत्मा की अमरता (Immortality of the Soul) — ताकि सद्गुण की पूर्ण-सिद्धि के लिए पर्याप्त समय हो; (3) ईश्वर का अस्तित्व (Existence of God) — जो सद्गुण व सुख के बीच अंतिम न्यायपूर्ण संतुलन सुनिश्चित करे।

8.4 छह वर्जित कार्यों की श्रेणियाँ (Six Forbidden Categories)

कांट ने 'ग्राउंडवर्क' में अपने सिद्धांत को चार प्रसिद्ध उदाहरणों से समझाया — आत्महत्या, झूठा वचन देकर उधार लेना, अपनी प्रतिभा को आलस्य में नष्ट होने देना, और ज़रूरतमंद की सहायता से मुँह मोड़ना। इन्हीं उदाहरणों और उनके अन्य लेखन के आधार पर कांट के दर्शन में कुछ कार्यों को सैद्धांतिक रूप से सदैव वर्जित माना जाता है, क्योंकि इन्हें 'सार्वभौमिक नियम' नहीं बनाया जा सकता — छल-कपट (Deception), चोरी (Theft), वचन-भंग (Breaking Promises), आलस्य (Idleness), स्वार्थपरता (Selfishness), तथा आत्म-क्षति जैसी अपने ही अस्तित्व के विरुद्ध की गई कार्रवाई (Self-Harm) — इन सभी को कांट अपने 'मानवता को सदैव एक साध्य मानो, केवल साधन नहीं' वाले सिद्धांत का उल्लंघन मानते थे, क्योंकि इनमें व्यक्ति स्वयं अपनी या किसी और की गरिमा के साथ केवल एक 'साधन' जैसा बर्ताव करता है।

निरपेक्ष आज्ञा तक पहुँचने के चार सिद्धांत	अर्थ
कर्तव्य का सिद्धांत	अंतरात्मा का पालन करते हुए कार्य को अपना कर्तव्य मानकर करो।
समानता का सिद्धांत	हर नियम सब पर समान रूप से लागू हो।
मानवता का सिद्धांत	मनुष्य को हमेशा साध्य मानो, केवल साधन नहीं।
सार्वभौमिकता का सिद्धांत	ऐसे कर्म करो जो सार्वभौमिक कर्म बन सकें — इससे आचरण का एक समान मानक बनता है (नैतिक निरपेक्षवाद)।

कांट बनाम मिल — मूल टकराव: कांट के लिए झूठ हमेशा गलत है, परिणाम चाहे जो हो, क्योंकि उसे सार्वभौमिक नियम नहीं बनाया जा सकता। इसके ठीक विपरीत मिल कहेंगे कि यदि एक झूठ किसी बड़ी हानि को रोक सके या बहुत लोगों को सुख दे (जैसे किसी आतंकवादी से झूठ बोलकर जानें बचाना), तो वह झूठ न केवल अनुमत, बल्कि नैतिक रूप से आवश्यक है। यही कर्तव्य-आधारित और परिणाम-आधारित नीतिशास्त्र का मूल तनाव है।

कांट के सिद्धांत का प्रयोग: व्यक्तिगत स्तर पर यह तर्कशीलता और कर्तव्यनिष्ठा बढ़ाता है, और नैतिक आदेश का पालन नैतिक स्वायत्तता लाता है, जो नेतृत्व-क्षमता देती है। प्रशासनिक स्तर पर सार्वभौमिक कर्म पंथनिरपेक्षता और तटस्थता की रक्षा करते हैं, और उचित तार्किक नियमों पर आधारित शासन जनता में भरोसा पैदा करता है। **आलोचनाएँ:** नैतिकता समाज-दर-समाज बदलती है, इसलिए निरपेक्षवाद हर स्थिति में उपयुक्त नहीं; मानव-जीवन का कोई लक्ष्य है, तो कर्म परिणाम से पूरी तरह अलग कैसे हो?; तर्क पर अत्यधिक ज़ोर भावनाओं की उपेक्षा करता है; और जटिल परिस्थितियों में सही सार्वभौमिक नियम तय करना कठिन है। फिर भी, परिणाम से प्रभावित हुए बिना निःस्वार्थ और नैतिक आचरण के लिए कांट का दर्शन अत्यंत प्रासंगिक है।

कांट की सबसे बड़ी आलोचना यह है कि उनका सिद्धांत बहुत कठोर और निरपेक्ष है — "झूठ कभी मत बोलो" का नियम तब भी लागू होगा, जब झूठ बोलकर किसी निर्दोष की जान बचाई जा सके। उपयोगितावाद (परिणाम देखता है) और कांट के कर्तव्यवाद (नियम देखता है) के बीच यही मूल द्वंद्व है।

9. जॉन रॉल्स (John Rawls) एवं डब्ल्यू.डी. रॉस (W.D. Ross)

9.1 जॉन रॉल्स (1921-2002) — न्याय का सिद्धांत

अमेरिकी दार्शनिक जॉन रॉल्स ने अपनी 1971 की कृति 'ए थ्योरी ऑफ जस्टिस' (A Theory of Justice) में न्याय को 'निष्पक्षता के रूप में न्याय' (Justice as Fairness) के रूप में परिभाषित किया। उनका उद्देश्य यह बताना था कि एक समाज के मूल नियम/ढाँचा किस तरह तय किए जाएँ ताकि वे सच में निष्पक्ष हों।

आसान परिभाषा: अज्ञानता का आवरण (Veil of Ignorance)

परिभाषा: रॉल्स का सुझाव है कि समाज के नियम बनाते समय हर व्यक्ति को यह कल्पना करनी चाहिए कि उसे यह नहीं पता कि समाज में उसकी अपनी स्थिति (अमीर/गरीब, ऊँची/नीची जाति, स्वस्थ/अशक्त) क्या होगी — इस 'अज्ञानता के आवरण' के पीछे से लिए गए फैसले ही सच में निष्पक्ष माने जा सकते हैं।

आसान भाषा में: जैसे कोई बड़ा केक बाँटने वाला व्यक्ति खुद नहीं जानता कि उसे कौन-सा टुकड़ा मिलेगा, तो वह हर टुकड़े को बराबर काटने की पूरी कोशिश करेगा — ठीक वैसे ही अगर नीति-निर्माता को यह न पता हो कि नीति का असर खुद उस पर किस रूप में पड़ेगा, तो वह सबसे निष्पक्ष नीति बनाने की कोशिश करेगा। **उदाहरण:** बिहार के एक ज़िलाधिकारी द्वारा किसी असहाय वृद्ध विधवा को अपने ही हाथों भोजन खिलाने जैसी संवेदनशील घटनाएँ यह दर्शाती प्रतीत होती हैं कि अधिकारी ने पद/स्थिति की दीवार हटाकर, खुद को उस असहाय व्यक्ति की जगह रखकर निर्णय व सहायता की — यह भावनात्मक रूप से 'अज्ञानता के आवरण' के करीब का व्यवहार माना जा सकता है (हालाँकि यह घटना-विशेष लोकप्रिय मीडिया-वृत्तांतों पर आधारित है, दर्शनशास्त्र की तकनीकी संकल्पना का प्रत्यक्ष उदाहरण नहीं)।

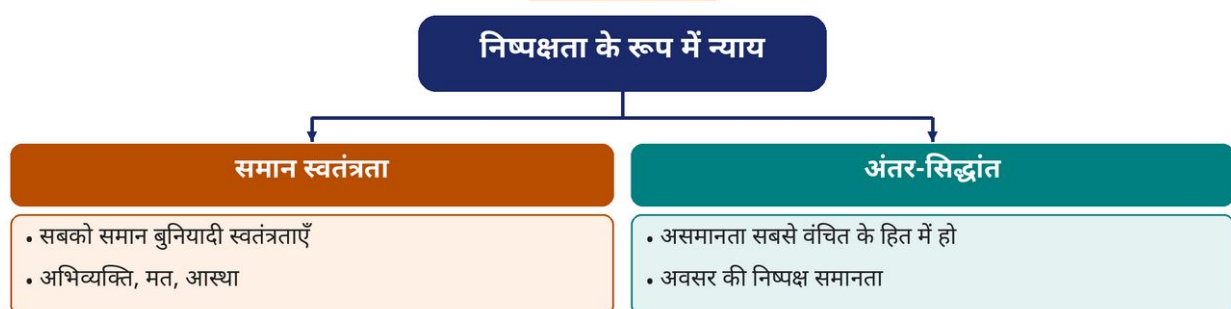
रॉल्स ने उपयोगितावाद क्यों अस्वीकार किया? रॉल्स के अनुसार न्याय उपयोगितावाद से नहीं निकल सकता, क्योंकि वह ऐसी शासन-व्यवस्थाओं के अनुरूप है, जहाँ बहुमत का अधिक सुख अल्पसंख्यक के अधिकारों और हितों की उपेक्षा से प्राप्त हो। यह धन और आय का अन्यायपूर्ण केंद्रीकरण भी पैदा करता है, जिससे कई नागरिक पदों और अवसरों के लिए निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा के बुनियादी साधनों से वंचित रह जाते हैं। रॉल्स ने सोवियत-शैली के साम्यवाद को भी अन्यायपूर्ण माना, क्योंकि वह बुनियादी स्वतंत्रताओं से मेल नहीं खाता और सबको पदों के लिए निष्पक्ष, समान अवसर नहीं देता।

चिंतनशील संतुलन (Reflective Equilibrium): यह वह तरीका है जिसमें हम अपने सामान्य नैतिक सिद्धांतों (जैसे 'सबके साथ समान व्यवहार हो') और विशेष मामलों पर अपने निर्णयों (जैसे 'इस बेहद गरीब परिवार को अतिरिक्त सहायता मिलनी चाहिए') के बीच आगे-पीछे जाँच करते हैं — जहाँ दोनों में टकराव दिखे, वहाँ कभी सिद्धांत को और कभी निर्णय को सुधारते हैं, जब तक दोनों में संतुलन न बन जाए। इसमें नियम बाहर से थोपे नहीं जाते, बल्कि लोग स्वतंत्र इच्छा से, सोच-विचार करके किसी सहमति या मानक तक पहुँचते हैं। **अज्ञानता का पर्दा हितों के टकराव को भी मिटाता है** — जब नियम बनाने वाला यह न जाने कि उसकी अपनी स्थिति, परिवार या हित क्या होंगे, तो वह निजी हित के लिए नियम नहीं बना सकता। रॉल्स के कार्य को सामान्यतः **समतावादी उदारवाद** का दार्शनिक आधार माना जाता है, जो आधुनिक कल्याणकारी राज्य या बाज़ार-आधारित सामाजिक लोकतंत्र में अधूरे रूप में दिखता है।

9.2 न्याय के दो सिद्धांत (Two Principles of Justice)

सिद्धांत	अर्थ	प्रशासनिक उदाहरण
समान स्वतंत्रता का सिद्धांत (Principle of Equal Liberty)	हर व्यक्ति को मौलिक स्वतंत्रताओं (वाणी, धर्म, मताधिकार आदि) का समान अधिकार होना चाहिए।	संविधान के मौलिक अधिकार (अनुच्छेद 14-32)।
अंतर सिद्धांत (Difference Principle)	सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ तभी उचित हैं जब वे समाज के सबसे कमज़ोर वर्ग को सबसे ज़्यादा लाभ पहुँचाएँ।	आरक्षण नीति, EWS आरक्षण, प्रगतिशील कराधान (Progressive Taxation)।

रॉल्स — न्याय के दो सिद्धांत



चित्र 6.12: रॉल्स — न्याय के दो सिद्धांत

रॉल्स और भारत की सामाजिक न्याय-नीति: रॉल्स का अंतर-सिद्धांत भारत की आरक्षण-नीति और सकारात्मक कार्यवाई (Affirmative Action) को दार्शनिक आधार देता है — असमानता तभी नैतिक रूप से स्वीकार्य है, जब वह सबसे वंचित वर्ग के हित में हो।

अज्ञानता का पर्दा — नियम बनाने की कसौटी



चित्र 6.13: अज्ञानता का पर्दा — नियम बनाने की कसौटी

कहानी: "बाँध और बस्ती" — चार विचारकों की कसौटी पर एक निर्णय

उदयपुर संभाग में एक बड़ी पेयजल-सह-सिंचाई बाँध परियोजना प्रस्तावित थी, जिससे लगभग दो लाख लोगों को पेयजल और हज़ारों किसानों को सिंचाई मिलनी थी। पर इसके डूब क्षेत्र में सात आदिवासी गाँव आते थे — लगभग 1,400 परिवार, जिनमें से कई के पास ज़मीन के पक्के काग़ज़ भी नहीं थे। ज़िला कलेक्टर रोहित (काल्पनिक नाम) पर काम जल्दी शुरू करवाने का भारी दबाव था।

पहली कसौटी — बेन्थम: गणित स्पष्ट था — दो लाख का लाभ बनाम 1,400 परिवारों का कष्ट; उपयोगितावाद परियोजना के पक्ष में था। **दूसरी कसौटी — कांट:** पर क्या आदिवासी परिवारों को केवल "विकास का साधन" बनाया जा सकता है? कांट कहते — नहीं; मनुष्य हमेशा साध्य है। उनकी सहमति, गरिमा और अधिकारों की अनदेखी नहीं हो सकती। **तीसरी कसौटी — रॉल्स:** रोहित ने खुद से पूछा — "यदि मैं नहीं जानता कि मैं शहर का उपभोक्ता बनूँगा या डूब क्षेत्र का आदिवासी, तो मैं कौन-सा नियम चाहूँगा?" उत्तर था — परियोजना तभी, जब सबसे वंचित की स्थिति पहले से बेहतर हो। **चौथी कसौटी — लॉक:** सत्ता की वैधता जनता की सहमति से आती है; ग्राम सभाओं की सहमति के बिना यह प्रक्रिया अधूरी है।

रोहित ने अपनी रिपोर्ट में परियोजना रोकने की नहीं, बल्कि उसे न्यायपूर्ण बनाने की सिफ़ारिश की — हर परिवार का वन अधिकार अधिनियम के तहत दावा पहले निपटारा जाए, ताकि बिना काग़ज़ वाले भी मुआवज़े के पात्र बनें; ग्राम सभाओं में खुली सुनवाई हो; ज़मीन के बदले ज़मीन, और पुनर्वास-बस्ती में स्कूल, स्वास्थ्य-केंद्र और रोज़गार की व्यवस्था डूब से पहले तैयार हो; और जलाशय में मछली पालन का पहला अधिकार विस्थापित परिवारों की सहकारी समिति को मिले।

परियोजना छह महीने देर से शुरू हुई, पर एक भी अदालती रोक नहीं लगी और कोई हिंसक विरोध नहीं हुआ। तीन साल बाद पुनर्वास-बस्ती के एक युवक ने, जो मछली-सहकारी समिति का सचिव बना था, कहा — "हमारा गाँव डूबा, पर हमें डुबोया नहीं गया।"

इस कहानी से सीख: कोई एक नैतिक सिद्धांत पूरा उत्तर नहीं देता। उपयोगितावाद लाभ दिखाता है, कांट गरिमा की रक्षा करता है, रॉल्स सबसे वंचित को प्राथमिकता देता है और लॉक सहमति को वैधता का आधार बनाता है। एक अच्छा प्रशासक इन सबको मिलाकर ऐसा निर्णय लेता है, जो कुशल भी हो और न्यायपूर्ण भी।

9.3 डब्ल्यू.डी. रॉस (W.D. Ross, 1877-1971) — प्रथम-दृष्ट्या कर्तव्य

ब्रिटिश दार्शनिक डब्ल्यू.डी. रॉस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द राइट एंड द गुड' (The Right and the Good, 1930) में कांट के 'निरपेक्ष व कठोर' कर्तव्यवाद की एक व्यावहारिक-लचीली काट प्रस्तुत की — उनके अनुसार कोई भी कर्तव्य 'निरपेक्ष' (Absolute) नहीं, बल्कि 'प्रथम-दृष्ट्या' (Prima Facie) होता है, यानी सामान्यतः बाध्यकारी, पर परिस्थिति-विशेष में किसी अन्य, ज़्यादा भारी कर्तव्य के आगे झुक सकता है।

क्र.	प्रथम-दृष्ट्या कर्तव्य (Prima Facie Duty)
1	निष्ठा (Fidelity) — दिए गए वचन/समझौते का पालन करना।
2	क्षतिपूर्ति (Reparation) — पिछली गलतियों की भरपाई करना।
3	कृतज्ञता (Gratitude) — उपकार करने वालों के प्रति आभार व्यक्त करना।
4	न्याय (Justice) — निष्पक्ष व उचित वितरण सुनिश्चित करना।
5	उपकार (Beneficence) — दूसरों की भलाई करना।
6	आत्म-सुधार (Self-Improvement) — अपने ज्ञान व सद्गुण को बेहतर बनाना।
7	अहानि (Non-Maleficence) — किसी को नुकसान न पहुँचाना।

रॉस के प्रथम-दृष्ट्या कर्तव्य

प्रथम-दृष्ट्या कर्तव्य



चित्र 6.14: रॉस के प्रथम-दृष्ट्या कर्तव्य

रॉस के अनुसार जब दो प्रथम-दृष्ट्या कर्तव्यों में टकराव हो (जैसे किसी मित्र से किया वादा निभाना बनाम किसी ज़रूरतमंद की मदद करना), तो व्यक्ति को अपने नैतिक-विवेक (Moral Intuition) से यह तय करना पड़ता है कि उस विशेष परिस्थिति में कौन-सा कर्तव्य 'वास्तविक कर्तव्य' (Actual Duty/Duty Proper) बनकर सामने आता है। यह लचीलापन ही रॉस के सिद्धांत को प्रशासनिक निर्णय-प्रक्रिया के लिए बेहद व्यावहारिक बनाता है, जहाँ अधिकारियों को अक्सर परस्पर-विरोधी कर्तव्यों के बीच संतुलन बनाना पड़ता है।

रॉस बनाम कांट: कांट कहते हैं "नियम कभी मत तोड़ो", जबकि रॉस कहते हैं "हर कर्तव्य सामान्यतः बाध्यकारी है, पर परिस्थिति के अनुसार विवेकपूर्ण संतुलन बनाओ" — इसीलिए प्रशासनिक दुविधाओं को सुलझाने में रॉस का सिद्धांत सबसे उपयोगी सिद्धांतों में से एक है।

कहानी: "सच या सांत्वना?" — दंगे की रात एक ज़िला मजिस्ट्रेट

एक ज़िले में त्योहार के जुलूस के दौरान दो समुदायों में झड़प हो गई। एक युवक गंभीर रूप से घायल होकर अस्पताल में था। रात दस बजे तक सोशल मीडिया पर अफ़वाह फैल गई कि उसकी मौत हो चुकी है, और दोनों ओर भीड़ जुटने लगी। ज़िला मजिस्ट्रेट **कविता** (काल्पनिक नाम) के एक सहयोगी ने सुझाव दिया — "मैडम, बयान जारी कर दीजिए कि युवक ख़तरे से बाहर है और घर लौट रहा है; भीड़ शांत हो जाएगी।" सच यह था कि युवक की हालत नाजुक थी।

कांट की कसौटी पर झूठ बोलना हमेशा गलत था — और अगर युवक की मृत्यु हो जाती, तो प्रशासन की हर बात पर से भरोसा हमेशा के लिए उठ जाता। **मिल** की कसौटी पर, यदि झूठ से दंगा रुकता और जानें बचतीं, तो वह उचित था। कविता ने **डब्ल्यू.डी. रॉस** के प्रथम-दृष्ट्या कर्तव्यों के बारे में सोचा — सत्य बोलने (निष्ठा) का कर्तव्य और हानि न होने देने (अहानिकरता) का कर्तव्य, दोनों सामने थे; प्रश्न था कि इस परिस्थिति में कौन-सा कर्तव्य भारी है, और क्या दोनों को साथ निभाने का कोई रास्ता है? और **मैक्स वेबर** का "उत्तरदायित्व का नीतिशास्त्र" कहता था — अपने निर्णय के अनुमानित परिणामों की ज़िम्मेदारी लो।

कविता ने झूठ नहीं बोला, पर अफ़वाह को भी नहीं बढ़ने दिया। उन्होंने स्वयं वीडियो-संदेश जारी किया — "युवक जीवित है और सबसे अच्छे डॉक्टर उसका इलाज कर रहे हैं; उसकी हालत गंभीर है, हम सब उसके लिए प्रार्थना करें। मौत की ख़बर पूरी तरह झूठी है; अफ़वाह फैलाने वालों पर कार्रवाई होगी।" अस्पताल के अधीक्षक का बयान और युवक के परिवार के एक बुजुर्ग की अपील भी साथ जारी हुई। दोनों समुदायों के धर्मगुरुओं को शांति-समिति में बुलाया गया, संवेदनशील इलाकों में बल तैनात हुआ और झूठी पोस्ट करने वाले खातों पर कार्रवाई शुरू हुई।

रात दो बजे तक भीड़ लौट गई। युवक की जान बच गई, और कुछ हफ़्तों बाद उसी शांति-समिति ने दोनों समुदायों का एक संयुक्त रक्तदान शिविर आयोजित किया। कविता ने बाद में प्रशिक्षु अधिकारियों से कहा — "संकट में सच और शांति के बीच चुनना नहीं पड़ता; सच को संवेदनशीलता से कहना पड़ता है।"

🔑 **इस कहानी से सीख:** कांट का "कभी झूठ मत बोलो" और मिल का "परिणाम देखो" — दोनों अपने-अपने में अधूरे हैं। रॉस के प्रथम-दृष्ट्या कर्तव्य बताते हैं कि टकराते कर्तव्यों के बीच विवेक से संतुलन बनाना पड़ता है, और वेबर का उत्तरदायित्व का नीतिशास्त्र परिणामों की ज़िम्मेदारी लेना सिखाता है। सबसे अच्छा रास्ता अक्सर वह होता है, जो दोनों कर्तव्य साथ निभाए — सत्य भी, शांति भी।

10. विकासवादी नैतिकता, जी.ई. मूर एवं अन्य पाश्चात्य विचारक

10.1 विकासवादी नैतिकता (Evolutionist Ethics)

हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer), लेस्ली स्टीफ़न (Leslie Stephen) व सैमुअल अलेक्ज़ेंडर (Samuel Alexander) जैसे विचारकों ने चार्ल्स डार्विन (1809–1882) की पुस्तक 'ऑन द ओरिजिन ऑफ़ स्पीशीज़' (On the Origin of Species, 1859) में दिए गए 'विकासवाद' (Evolution) के सिद्धांत को नैतिकता पर लागू किया — उनके अनुसार नैतिकता भी जैविक विकास की तरह ही धीरे-धीरे, समय के साथ, 'योग्यतम की उत्तरजीविता' (Survival of the Fittest — यह वाक्यांश स्वयं इंग्लैंड के दार्शनिक हर्बर्ट स्पेंसर ने गढ़ा था) के सिद्धांत के अनुरूप विकसित हुई है। जो नैतिक व्यवहार समाज के अस्तित्व व सहयोग के लिए ज़्यादा उपयोगी साबित हुए, वही समय के साथ स्थायी सामाजिक मूल्यों/नैतिक-मानकों के रूप में स्थापित हो गए।

◆ **आलोचना** — इस सिद्धांत की सबसे बड़ी कमी यह मानी जाती है कि यह 'जो व्यवहार टिका रहा' (Is) और 'जो व्यवहार नैतिक रूप से सही है' (Ought) — इन दोनों को एक समान मान लेता है, जो जी.ई. मूर की 'नैसर्गिक भ्रांति' (देखें अगला उप-भाग) के दायरे में आ सकता है।

☀ प्रशासनिक/विधिक उदाहरण

दिसंबर 2023 में पारित 'निरसन और संशोधन अधिनियम, 2023' (Repealing and Amending Act, 2023) के माध्यम से भारत सरकार ने कई पुराने, अप्रचलित हो चुके कानूनों को निरस्त किया — यह दर्शाता है कि कानून/सामाजिक-नियम भी समय के साथ 'विकसित' होते रहते हैं, ठीक वैसे ही जैसे विकासवादी नैतिकता का सिद्धांत बताता है।

10.2 जी.ई. मूर (G.E. Moore, 1873-1958)

आसान परिभाषा: नैसर्गिक भ्रांति (Naturalistic Fallacy)

परिभाषा: कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से जुड़े ब्रिटिश दार्शनिक जी.ई. मूर ने अपनी कृति 'प्रिंसिपिया एथिका' (Principia Ethica, 1903) में तर्क दिया कि 'अच्छाई' (Good) एक सरल, अपरिभाष्य (Non-natural, Indefinable) गुण है — इसे किसी भी प्राकृतिक/अनुभवजन्य गुण (जैसे 'सुखद', 'विकासशील', 'लोकप्रिय') के बराबर मान लेना एक तार्किक भूल है, जिसे उन्होंने 'नैसर्गिक भ्रांति' कहा।

आसान भाषा में: जैसे यह कहना गलत होगा कि 'मीठा होना' और 'अच्छा होना' बिल्कुल एक ही चीज़ है (क्योंकि कोई मीठी चीज़ स्वास्थ्य के लिए हानिकारक भी हो सकती है) — ठीक वैसे ही मूर कहते हैं कि 'जो प्राकृतिक/लोकप्रिय है, वही नैतिक रूप से अच्छा है' मान लेना एक जैसी ही तार्किक भूल है। **उदाहरण:** यह सिद्धांत विकासवादी नैतिकता व उपयोगितावाद जैसे उन सभी सिद्धांतों की एक तीखी आलोचना है, जो 'अच्छाई' को किसी एक प्राकृतिक तथ्य (जैसे 'टिके रहना' या 'सुख देना') तक सीमित कर देते हैं — मूर के अनुसार 'अच्छाई' इससे कहीं ज़्यादा गहन व स्वतंत्र अवधारणा है।

मूर और एयर: मूर ने अपनी पुस्तक "प्रिंसिपिया एथिका" में कहा कि "शुभ" एक मूल गुण है, जैसे "पीला" रंग — इसे किसी और चीज़ में तोड़कर परिभाषित नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत **भावनावादी (Emotivist)** दार्शनिक **ए.जे. एयर (A.J. Ayer)** (1910–1989) — ब्रिटिश दार्शनिक, जिनकी पुस्तक 'लैंग्वेज, ट्रुथ एंड लॉजिक' (Language, Truth and Logic, 1936) प्रसिद्ध है — ने कहा कि नैतिक कथन तथ्यात्मक कथन हैं ही नहीं — "चोरी गलत है" कहना कोई तथ्य बताना नहीं, बल्कि केवल अस्वीकृति की भावना व्यक्त करना है, जैसे "चोरी — छी!"

10.3 मेटा-नीतिशास्त्र — नैतिक कथनों की प्रकृति पर विभिन्न मत

मेटा-नीतिशास्त्र (Meta-ethics) यह नहीं पूछता कि "क्या करना चाहिए", बल्कि यह पूछता है कि "नैतिक कथन क्या हैं — क्या वे सत्य या असत्य हो सकते हैं, और उनका स्रोत क्या है?" इस पर प्रमुख मत हैं:

मत	मूल विचार
नैतिक सापेक्षवाद (Relativism)	नैतिकता अपनी संस्कृति के मानदंडों के सापेक्ष है; एक ही कर्म एक समाज में सही और दूसरे में गलत हो सकता है; कोई सार्वभौमिक नैतिक सिद्धांत नहीं। यह सहिष्णुता को बढ़ावा देता है। प्रमुख प्रवक्ता — मानवविज्ञानी रूथ बेनेडिक्ट (अमेरिका, 1887–1948) ("जो सामान्य है, वही नैतिक है")।
नैतिक वस्तुनिष्ठतावाद (Objectivism)	सार्वभौमिक और वस्तुनिष्ठ रूप से मान्य नैतिक सिद्धांत हैं, जो न व्यक्ति के सापेक्ष हैं, न समाज के — रसायन या इतिहास के कथनों की तरह वे सत्य या असत्य होते हैं, चाहे कोई कुछ भी माने।
नैतिक निरपेक्षवाद (Absolutism)	कुछ नैतिक नियम हमेशा, हर स्थिति में और सब पर लागू होते हैं; उन्हें तोड़ने वाले कर्म परिस्थिति या परिणाम से परे, अपने आप में गलत हैं।
नैतिक यथार्थवाद (Realism)	ब्रह्मांड में वास्तविक, वस्तुनिष्ठ नैतिक तथ्य हैं; नैतिक कथन उन तथ्यों की जानकारी देते हैं।
व्यक्तिनिष्ठतावाद (Subjectivism)	नैतिक निर्णय केवल व्यक्ति की भावनाओं या दृष्टिकोण के कथन हैं; उनमें अच्छाई-बुराई के बारे में कोई तथ्य नहीं।
भावनावाद (Emotivism)	नैतिक कथन स्वीकृति या अस्वीकृति की अभिव्यक्ति मात्र हैं — वे भावना के बारे में जानकारी नहीं देते, बस भावना व्यक्त करते हैं (ए.जे. एयर)।
निर्देशवाद (Prescriptivism)	नैतिक कथन निर्देश या सिफ़ारिश हैं — "यह अच्छा है" का अर्थ है "ऐसा करो"।
अलौकिकतावाद (Supernaturalism)	नैतिकता धर्म से अविभाज्य है; नैतिक नियमों का एकमात्र स्रोत ईश्वर है।
अंतर्ज्ञानवाद (Intuitionism)	अच्छाई-बुराई वास्तविक वस्तुनिष्ठ गुण हैं, जिन्हें मनुष्य अपने नैतिक अंतर्ज्ञान से सीधे पहचानता है; बुनियादी नैतिक सत्य स्वयं-स्पष्ट हैं (जी.ई. मूर इसी परंपरा से जुड़े हैं)।

ह्यूम की "है-चाहिए" समस्या (Is-Ought Problem): स्कॉटिश दार्शनिक **डेविड ह्यूम (David Hume)** (1711–1776), जिनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'ए ट्रीटाइज़ ऑफ़ ह्यूमन नेचर' (A Treatise of Human Nature) है, ने बताया कि तथ्यात्मक कथनों ("क्या है" — राजनीतिक यथार्थ) से सीधे नैतिक कथन ("क्या होना चाहिए" — नैतिक आदर्श) नहीं निकाले जा सकते; दोनों के बीच एक खाई है। प्रशासन और राजनीति का काम इसी खाई को पाटना है — राजनीतिक साधनों से नैतिक लक्ष्यों तक पहुँचना। ऊपर दी गई विकासवादी नैतिकता की आलोचना भी इसी "है" और "चाहिए" के भ्रम पर आधारित है।

नीतिशास्त्र की तीन शाखाएँ



चित्र 6.15: नीतिशास्त्र की तीन शाखाएँ

10.4 अन्य पाश्चात्य विचारक — संक्षिप्त उल्लेख

विचारक	मुख्य नैतिक योगदान
अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln, 1809–1865; अमेरिका के 16वें राष्ट्रपति)	"जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए शासन" — लोकतांत्रिक जवाबदेही व समानता (दास-प्रथा की समाप्ति) के प्रबल पक्षधर।
नेल्सन मंडेला (Nelson Mandela, 1918–2013; दक्षिण अफ्रीका के पहले अश्वेत राष्ट्रपति)	क्षमा, सुलह (Reconciliation) व शांतिपूर्ण वार्ता के माध्यम से रंगभेद (Apartheid) का अंत — 27 वर्ष जेल में रहकर भी बदले की भावना से मुक्त नेतृत्व की मिसाल।

नैसर्गिक भ्रांति को समझने का सरल तरीका: स्वयं से पूछिए — "क्या हर वह चीज़ जो प्राकृतिक या लोकप्रिय है, अपने आप नैतिक रूप से सही भी है?" उत्तर "नहीं" है — और यही मूर का पूरा तर्क है।

11. आधुनिक नैतिक दृष्टिकोण — अस्तित्ववाद, देखभाल का नीतिशास्त्र एवं नैतिक स्वार्थवाद

बीसवीं शताब्दी में नैतिक सिद्धांत और जटिल हुए। **डब्ल्यू.डी. रॉस** जैसे दार्शनिकों ने कहा कि नैतिक सिद्धांत यह नहीं बता सकते कि कोई कर्म पूर्णतः सही या गलत है, बल्कि केवल यह कि वह किसी कर्तव्य (परोपकार, निष्ठा, न्याय) के अनुसार सही होने की प्रवृत्ति रखता है। आधुनिक नैतिक दर्शन तेज़ी से **"अधिकार-आधारित नीतिशास्त्र"** की ओर बढ़ा है — मानवाधिकार, नागरिक-राजनीतिक अधिकार और सामाजिक-आर्थिक अधिकार। इसके उदाहरण हैं **संयुक्त राष्ट्र का मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणापत्र (1948)** और **कल्याणवाद (Welfarism)**, जिसके अनुसार लोगों का यह उचित दावा बनता है कि राज्य उन्हें सुरक्षा, स्वास्थ्य, शिक्षा, रोज़गार और आवास दे — यानी ये सुविधाएँ कृपा नहीं, बल्कि नागरिक का अधिकार मानी जाती हैं।

11.1 ज्यॉ-पॉल सार्त्र (Jean-Paul Sartre) — अस्तित्ववादी नीतिशास्त्र

बीसवीं सदी के प्रमुख फ्रांसीसी अस्तित्ववादी दार्शनिक **सार्त्र (1905–1980)** — जो 'बीइंग एंड नथिंगनेस' (Being and Nothingness, 1943) पुस्तक के लेखक थे और जिन्होंने 1964 का साहित्य का नोबेल पुरस्कार लेने से मना कर दिया था — के अनुसार दर्शन का आरंभ-बिंदु **व्यक्ति और उसके अनुभव** होने चाहिए; पारंपरिक व्यवस्थित दर्शन ठोस मानवीय अनुभव से बहुत दूर और अमूर्त हैं। अस्तित्ववाद का केंद्रीय सूत्र है — **"अस्तित्व सार से पहले आता है"** (Existence precedes Essence) — यानी व्यक्ति के लिए सबसे महत्वपूर्ण यह है कि वह एक स्वतंत्र रूप से कर्म करने वाला, जिम्मेदार और सचेत प्राणी है, न कि वे लेबल, भूमिकाएँ या रूढ़ियाँ, जिनमें दूसरे उसे फिट करते हैं। मनुष्य अपनी चेतना से **स्वयं अपने मूल्य रचता है** और अपने जीवन का अर्थ तय करता है। इसे एक उदाहरण से समझें — कुर्सी बनने से पहले ही बढ़ई के मन में उसका उद्देश्य (सार) तय होता है, पर मनुष्य पहले जन्म लेता है (अस्तित्व) और फिर अपने चुनावों और कर्मों से तय करता है कि वह क्या बनेगा (सार)।

प्रामाणिकता का नीतिशास्त्र (Ethics of Authenticity): सार्त्र के अनुसार प्रामाणिकता के तीन स्तंभ हैं — **स्वतंत्रता, चुनाव और आत्म-प्रतिबद्धता**। प्रामाणिक कर्म वह है, जो व्यक्ति "स्वयं के रूप में" करता है — न कि "जैसा सब करते हैं" या "जैसा उसके जिन या पद कहते हैं"। सार्त्र मानते थे कि व्यक्ति पर ध्यान देना ज़रूरी है, क्योंकि व्यक्ति ही समाज को प्रभावित करते हैं। **प्रशासनिक अर्थ:** "मैं तो बस आदेश मान रहा था" — यह बहाना अस्तित्ववाद में स्वीकार्य नहीं; हर अधिकारी अपने चुनाव के लिए स्वयं उत्तरदायी है। डेनिश दार्शनिक **सोरेन कीर्केगार्ड (Søren Kierkegaard) (1813–1855)** — जिन्हें अस्तित्ववाद का जनक माना जाता है — ने भी "अस्तित्वगत चुनाव" की पीड़ा पर ज़ोर दिया — सच्ची नैतिक दुविधा में व्यक्तिगत जिम्मेदारी से बचने का कोई रास्ता नहीं; व्यक्ति को नैतिक अनिश्चितता के बीच भी निर्णय की "छलाँग" लगानी पड़ती है।

11.2 कैरल गिलिगन (Carol Gilligan) — देखभाल का नीतिशास्त्र

नारीवादी नीतिशास्त्र पारंपरिक नीतिशास्त्र को नए सिरे से देखने का प्रयास है। सदियों से नैतिक चिंतक दो बड़े नैतिक आदर्शों की बात करते रहे — **"न्याय"** और **"प्रेम"**; पर धीरे-धीरे "प्रेम" की जगह "शुभ" और "उपयोगिता" जैसी अवधारणाओं ने ले ली। अमेरिकी मनोवैज्ञानिक (जन्म 1936) **कैरल गिलिगन** ने अपनी पुस्तक **"इन ए डिफरेंट वॉइस" (1982)** में महिलाओं के देखभाल-केंद्रित व्यवहार पर ध्यान दिया और पारंपरिक, पुरुष-केंद्रित **"न्याय के नीतिशास्त्र"** के सामने **"देखभाल का नीतिशास्त्र" (Ethic of Care)** रखा।

गिलिगन के अनुसार **न्याय अवैयक्तिक** है — व्यक्तिगत अधिकार, क़ानून के सामने समानता, निष्पक्ष खेल — ये सब दूसरों से निजी जुड़ाव के बिना भी पाए जा सकते हैं। जबकि दूसरों के प्रति संवेदनशीलता, निष्ठा, ज़िम्मेदारी, आत्म-त्याग और शांति-स्थापना **पारस्परिक जुड़ाव** से आते हैं — **"देखभाल जुड़ाव से आती है।"** उन्होंने अपने ही गुरु, अमेरिकी मनोवैज्ञानिक लॉरेंस कोलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धांत (जो बताता है कि मनुष्य की नैतिक सोच छह चरणों में विकसित होती है) की भी आलोचना की कि वह केवल न्याय-आधारित तर्क को "उच्च" नैतिकता मानता है और इसी कारण देखभाल-आधारित सोच वाली महिलाओं को नैतिक विकास में 'पिछड़ा' दिखा देता है।

न्याय का नीतिशास्त्र बनाम देखभाल का नीतिशास्त्र

न्याय (Justice)	बनाम	देखभाल (Care)
अधिकार, नियम, निष्पक्षता	केंद्र	संबंध, ज़िम्मेदारी, संवेदना
अवैयक्तिक, सार्वभौमिक	स्वरूप	व्यक्तिगत, संदर्भ-आधारित
क्या उचित है?	प्रश्न	किसे किस चीज़ की ज़रूरत है?
नियमों का समान पालन	प्रशासन में	कमज़ोर के प्रति करुणामय व्यवहार

चित्र 6.16: न्याय का नीतिशास्त्र बनाम देखभाल का नीतिशास्त्र

प्रशासनिक अर्थ: आदर्श प्रशासन में दोनों चाहिए — नियमों का निष्पक्ष, समान पालन (न्याय) और बुजुर्गों, दिव्यांगों, बच्चों तथा पीड़ितों के प्रति संवेदनशील, मानवीय व्यवहार (देखभाल)। जैसे किसी दुष्कर्म-पीड़िता का बयान लेते समय प्रक्रिया का कठोर पालन न्याय है, और महिला अधिकारी, निजता और परामर्श की व्यवस्था देखभाल।

11.3 नैतिक स्वार्थवाद — ऐन रैंड (Ayn Rand)

मनोवैज्ञानिक स्वार्थवाद (हॉब्स) एक तथ्यात्मक दावा है कि मनुष्य स्वभाव से अपनी इच्छाओं और हितों की पूर्ति चाहता है; जबकि **नैतिक स्वार्थवाद** एक मूल्य-कथन है कि व्यक्ति को अपने **तार्किक स्व-हित** का पालन करना चाहिए। बीसवीं सदी के अमेरिका में **ऐन रैंड (1905-1982)** — रूस में जन्मी अमेरिकी लेखिका-दार्शनिक, जो 'द फाउंटेनहेड' (The Fountainhead, 1943) और 'एटलस श्रग्ड' (Atlas Shrugged, 1957) जैसे उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध हैं — नैतिक स्वार्थवाद की प्रबल समर्थक थीं — उनकी पुस्तक का नाम ही था **"द वर्चु ऑफ़ सेल्फ़िशनेस"** (स्वार्थ का सद्गुण, 1964)। उनके लिए स्वतंत्रता, व्यक्तिगत गरिमा, आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास और श्रम की गरिमा महत्वपूर्ण मूल्य थे। उनके अनुसार मनुष्य को केवल भोजन नहीं चाहिए, उसे उत्पादक कार्य करना है, सोचना है, ज्ञान खोजना है — इसलिए **तार्किक स्व-हित की खोज एक सद्गुण** है।

रैंड परार्थवादी नैतिकता की विरोधी थीं — उनके अनुसार परार्थवाद मनुष्य को दूसरों के लिए अपना हित बलिदान करने का आदेश देता है, जो संभव तो है पर वांछनीय नहीं; शुद्ध परार्थवाद मनुष्य को "बलि के पशु" की तरह देखता है, और हर तानाशाह परार्थवादी नैतिकता के नाम पर ही मानवाधिकारों और विचार-स्वातंत्र्य को दबाता है। रैंड के अनुसार दूसरों की मदद करने में कुछ गलत नहीं, पर यह **नैतिक कर्तव्य नहीं** — यह व्यक्ति के स्वतंत्र, तार्किक चुनाव का परिणाम होना चाहिए। **आलोचना:** यह विचार सामाजिक दायित्व, करुणा और कल्याणकारी राज्य की भारतीय और गांधीवादी अवधारणाओं से बिल्कुल विपरीत है, और असमानता को बढ़ा सकता है।

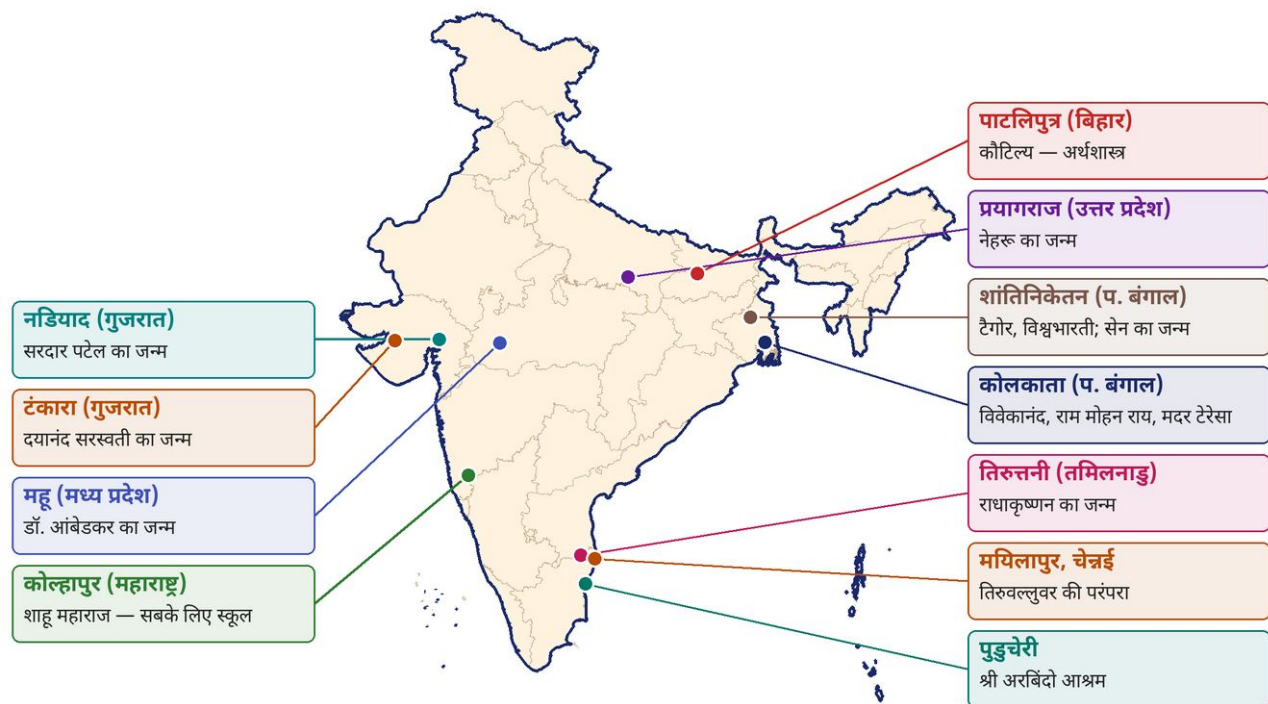
किसका हित? — स्वार्थवाद से परार्थवाद तक

मनोवैज्ञानिक स्वार्थवाद हॉब्स — मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी है	नैतिक स्वार्थवाद ऐन रैंड — तार्किक स्व-हित सद्गुण है	उपयोगितावाद बेन्थम, मिल — सबका अधिकतम सुख	परार्थवाद लोकसंग्रह, सेवा — दूसरों का हित
--	--	---	---

चित्र 6.17: किसका हित? — स्वार्थवाद से परार्थवाद तक

12. स्वामी विवेकानंद एवं रवींद्रनाथ टैगोर

भारत के नैतिक चिंतक — जन्म और कर्मभूमि



चित्र 6.18: भारत के नैतिक चिंतक — जन्म और कर्मभूमि

12.1 स्वामी विवेकानंद (1863-1902)

कोलकाता में जन्मे स्वामी विवेकानंद (मूल नाम नरेंद्रनाथ दत्त) संत रामकृष्ण परमहंस के शिष्य थे और उन्होंने 1897 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। उन्होंने 1893 के शिकागो विश्व-धर्म सम्मेलन में भारतीय अध्यात्म को वैश्विक मंच पर प्रतिष्ठित किया। उनकी नैतिक-दृष्टि 'व्यावहारिक वेदांत' (Practical Vedanta) पर आधारित थी — यानी वेदांत के गूढ़ दार्शनिक सिद्धांतों को रोजमर्रा के जीवन व समाज-सेवा में उतारना।

आसान परिभाषा: नव-वेदांत (Neo-Vedanta) — 'जीव ही शिव है'

परिभाषा: विवेकानंद ने वेदांत के 'सभी में एक ही ब्रह्म है' वाले सिद्धांत को इस रूप में ढाला कि हर जीवित प्राणी में ईश्वर का ही अंश है — इसलिए मानव-सेवा ही सच्ची ईश्वर-सेवा है, यही 'जीव ही शिव है' (Jiva is Shiva) का सार है।

आसान भाषा में: जैसे अगर हम मानें कि हर बच्चा हमारे अपने परिवार का ही हिस्सा है, तो हम स्वतः ही उसकी भलाई की परवाह करने लगेंगे — विवेकानंद कहते हैं कि हर मनुष्य में ईश्वर को देखने पर हम स्वतः ही निःस्वार्थ सेवा-भाव अपना लेते हैं। **उदाहरण:** रामकृष्ण मिशन द्वारा आपदा-राहत, शिक्षा व स्वास्थ्य-सेवा के क्षेत्र में किया गया कार्य — जहाँ हर ज़रूरतमंद में 'नारायण' (ईश्वर) का रूप देखकर सेवा की जाती है — यह 'जीव ही शिव है' के सिद्धांत का सबसे सटीक व्यावहारिक उदाहरण है।

विवेकानंद के अन्य प्रमुख विचार

- ◆ दरिद्र नारायण की सेवा — निर्धनों व वंचितों की सेवा को ही सबसे बड़ी पूजा माना (गांधीजी ने भी यही अवधारणा आगे अपनाई — देखें अध्याय 5)।
- ◆ निर्भयता (Fearlessness) — "उठो, जागो, और तब तक मत रुको जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए" — उनका मानना था कि निर्भयता ही सबसे बड़ा सद्गुण है, भय ही सभी पापों/कमज़ोरियों की जड़ है। एक ऐसा प्रशासक जो अनुचित दबाव के बावजूद निडरता से सही निर्णय लेने का साहस दिखाता है, वह इसी सिद्धांत का उदाहरण है।
- ◆ सार्वभौमिक भाईचारा (Universal Brotherhood) — सभी धर्मों को सत्य के अलग-अलग मार्ग मानते हुए धार्मिक सहिष्णुता व सद्भाव को बढ़ावा दिया।

व्यावहारिक वेदांत के पाँच घटक: (1) **सार्वभौमिकता** — वेदांत के सत्य पूरी मानवता पर लागू होते हैं; एक ही धारा हर मनुष्य में बहती है; (2) **अवैयक्तिकता** — वेदांत किसी व्यक्ति या अवतार पर नहीं, अपने शाश्वत सिद्धांतों पर टिका है; (3) **तार्किकता** — वेदांत आधुनिक विज्ञान की पद्धतियों और निष्कर्षों से पूरी तरह मेल खाता है; (4) **एकत्व** — ब्रह्मांड में एक ही आत्मा है और सभी प्राणी उसी एक सत्य के रूप हैं; इसी आध्यात्मिक एकत्व से सारी नैतिकता निकलती है — **हम दूसरे से प्रेम इसलिए करते हैं, क्योंकि उसमें स्वयं को देखते हैं;** और इसी को सामाजिक-राजनीतिक जीवन में लागू करने से लोकतंत्र, समाजवाद, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का आध्यात्मिकरण होता है — यानी ये मूल्य केवल कानूनी

या राजनीतिक नियम नहीं रह जाते, बल्कि इस विश्वास पर टिक जाते हैं कि हर मनुष्य में एक ही दिव्यता है, इसलिए सबसे समान और भाईचारे का व्यवहार हमारा भीतरी कर्तव्य है; (5) **आशावाद** — वेदांत अडिग आशा सिखाता है, मनुष्य को बलवान और आत्मनिर्भर बनाता है।

विवेकानंद के अनुसार **मूल्य बाहर से थोपे नहीं जाते**, बल्कि हर आत्मा में निहित दिव्यता की अभिव्यक्ति हैं — करुणा, पवित्रता और शक्ति जैसे मूल्य अपने सच्चे, सार्वभौमिक स्वरूप को पहचानने से जन्म लेते हैं। उनके लिए सच्चा धर्म चरित्र-निर्माण और मानवता की सेवा में है।

विवेकानंद का व्यावहारिक वेदांत

व्यावहारिक वेदांत

सार्वभौमिकता

सब पर लागू

अवैयक्तिकता

सिद्धांत-आधारित

तार्किकता

विज्ञान से मेल

एकत्व

सबमें एक आत्मा

आशावाद

बल, आत्मनिर्भरता

चित्र 6.19: विवेकानंद का व्यावहारिक वेदांत

12.2 रवींद्रनाथ टैगोर (1861-1941)

कोलकाता में जन्मे गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर — कवि, दार्शनिक, शिक्षाविद् — अपनी काव्य-कृति 'गीतांजलि' के लिए 1913 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार पाने वाले पहले एशियाई/भारतीय बने। भारत का राष्ट्रगान 'जन गण मन' भी उन्हीं की रचना है। उनकी नैतिक-दृष्टि मानवतावाद, रचनात्मक स्वतंत्रता व सार्वभौमिकता पर केंद्रित थी।

- ◆ मनुष्य में अतिरिक्त (Surplus in Man) — टैगोर के अनुसार मनुष्य केवल जैविक ज़रूरतों (भोजन, नींद) तक सीमित नहीं, बल्कि उसमें एक 'अतिरिक्त' रचनात्मक, सौंदर्यात्मक व आध्यात्मिक आयाम भी है, जो उसे बाकी प्राणियों से अलग करता है।
- ◆ शांतिनिकेतन व विश्व-भारती — प्रकृति की गोद में, रचनात्मकता व स्वतंत्र चिंतन पर आधारित शिक्षा का एक अनूठा प्रयोग, जो आज भी वैकल्पिक शिक्षा-मॉडलों के लिए प्रेरणास्रोत है।
- ◆ संकुचित राष्ट्रवाद का विरोध — टैगोर मानते थे कि अंधराष्ट्रवाद (Extreme Nationalism) मानवता की व्यापक भावना के लिए हानिकारक है (देखें अध्याय 5 — गांधी बनाम टैगोर तुलना)।

टैगोर — स्वतंत्रता और शिक्षा का दर्शन: टैगोर ने 1901 में शांतिनिकेतन में प्रायोगिक विद्यालय शुरू किया, जो 1921 में **विश्वभारती विश्वविद्यालय** बना। 1919 में जलियाँवाला बाग हत्याकांड के विरोध में उन्होंने अंग्रेजों की दी हुई **"नाइटहुड"** की उपाधि लौटा दी। उनके लिए **राजनीतिक स्वतंत्रता तभी सच्ची है, जब उसके साथ आध्यात्मिक स्वतंत्रता हो**; व्यक्ति की स्वतंत्रता और राष्ट्र की स्वतंत्रता एक-दूसरे के बिना अधूरी हैं। उन्होंने नरमपंथियों (जो अंग्रेजों से प्रार्थना और याचिका के रास्ते सुधार चाहते थे) और गरमपंथियों (जो बहिष्कार और उग्र आंदोलन के पक्ष में थे) — दोनों के रास्तों को सामाजिक-सांस्कृतिक विकास के लिए अपर्याप्त माना, क्योंकि उनके अनुसार राष्ट्र केवल राजनीतिक माँगों से नहीं, बल्कि गाँवों में शिक्षा, आत्मनिर्भरता और सामाजिक सुधार के रचनात्मक काम से सच में खड़ा होता है।

टैगोर की शिक्षा के लक्ष्य	अर्थ
आत्म-साक्षात्कार	व्यक्तित्व का विकास आत्म-बोध और आध्यात्मिक ज्ञान पर निर्भर है
बौद्धिक विकास	कल्पना, रचनात्मक स्वतंत्र चिंतन, जिज्ञासा; बच्चे को अपने ढंग से सीखने की स्वतंत्रता
शारीरिक विकास	योग, खेल — शिक्षा का अभिन्न अंग
मानवता से प्रेम	अंतरराष्ट्रीय समझ और विश्व-बंधुत्व की शिक्षा
स्वतंत्रता	शिक्षा थोपना नहीं, मनुष्य की भीतरी शक्ति को खोजने की उदार प्रक्रिया है
प्रकृति से संबंध	मनुष्य और प्रकृति के तालमेल से ही शांतिपूर्ण विश्व संभव
मातृभाषा	भाषा अभिव्यक्ति का सच्चा माध्यम है — शिक्षा मातृभाषा में
नैतिक-आध्यात्मिक विकास	किताबी ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण — निःस्वार्थता, सहयोग, साझेदारी

आध्यात्मिक मानववाद: टैगोर के लिए **मनुष्य स्वयं एक साध्य** है और ईश्वर मानवीय पूर्णता का प्रतीक है। उनका मानववाद संसार से विरक्ति और कठोर तप में नहीं, बल्कि संसार के सौंदर्य को अपनाने में विश्वास करता है; इसमें संकीर्ण, स्वार्थी व्यक्तिवाद का कोई स्थान नहीं — व्यक्ति की पूर्णता पूरे समाज के हित के लिए है। उन्होंने सुखवाद और उपयोगितावाद को भी अस्वीकार किया, क्योंकि उनके लिए जीवन का लक्ष्य सुख का हिसाब लगाना नहीं, बल्कि प्रेम, सृजन और आत्मा की पूर्णता था।

“ मैं सोया और सपना देखा कि जीवन आनंद है; मैं जागा और देखा कि जीवन सेवा है; मैंने सेवा की और पाया कि सेवा ही आनंद है। (I slept and dreamt that life was joy. I awoke and saw that life was service. I acted and behold, service was joy.) ” — रवींद्रनाथ टैगोर के नाम से प्रचलित (Rabindranath Tagore)

✨ प्रामाणिक कथन

"जहाँ मन बिना किसी भय के हो और सिर ऊँचा उठाकर चले... उस स्वतंत्रता के स्वर्ग में, हे मेरे पिता, मेरे देश को जगाओ" ('Where the mind is without fear and the head is held high...') — 'गीतांजलि' से टैगोर की यह प्रसिद्ध कविता एक ऐसे स्वतंत्र, निर्भय व

विवेकानंद और टैगोर का सूक्ष्म भेद: दोनों ही मानवतावाद की बात करते हैं, पर विवेकानंद का मार्ग सेवा और निर्भयता से होकर जाता है, जबकि टैगोर का मार्ग रचनात्मकता और स्वतंत्र चिंतन से।

13. श्री अरबिंदो, डॉ. राधाकृष्णन एवं अमर्त्य सेन

13.1 श्री अरबिंदो (1872-1950)

कोलकाता में जन्मे श्री अरबिंदो — जो पहले स्वतंत्रता आंदोलन के क्रांतिकारी नेता थे और अलीपुर बम कांड (1908) में जेल जाने के बाद योग-साधना की ओर मुड़े तथा 1910 से पुडुचेरी में रहे — ने 'समग्र योग' (Integral Yoga) व 'दिव्य जीवन' (उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'द लाइफ़ डिवाइन' का मुख्य विचार) जैसी अवधारणाओं के माध्यम से आध्यात्म व भौतिक जीवन के बीच के भेद को मिटाने का प्रयास किया।

◆ **दिव्य जीवन (The Life Divine)** — मनुष्य का लक्ष्य केवल मोक्ष पाकर संसार से पलायन करना नहीं, बल्कि इस धरती पर ही चेतना को उच्चतम (दिव्य) स्तर तक विकसित करना है।

◆ **साधनत्व (Instrumentality)** — मनुष्य को स्वयं को ईश्वरीय इच्छा (या उच्च उद्देश्य) का एक 'साधन/उपकरण' मानकर निःस्वार्थ भाव से कर्म करना चाहिए — यह गीता के निष्काम कर्म योग से मिलता-जुलता विचार है।

समग्र शिक्षा (Integral Education): श्री अरबिंदो ने ऐसी शिक्षा का समर्थन किया, जिसका लक्ष्य मनुष्य के पाँचों पक्षों — शारीरिक, प्राणिक (Vital), मानसिक, आत्मिक (Psychic) और आध्यात्मिक — का सामंजस्यपूर्ण विकास है। उनके अनुसार सच्ची शिक्षा "आत्मिक सत्ता" (Psychic Being) के विकास में मदद करती है, जो हमारे गहरे मूल्यों और अंतर्निहित अच्छाई का स्रोत है — और यही संपूर्ण चरित्र-निर्माण की ओर ले जाती है।

श्री अरबिंदो की समग्र शिक्षा — पाँच आयाम



चित्र 6.20: श्री अरबिंदो की समग्र शिक्षा — पाँच आयाम

13.2 डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (1888-1975)

तमिलनाडु के तिरुत्तनी में जन्मे प्रख्यात दार्शनिक, भारत के पहले उपराष्ट्रपति और दूसरे राष्ट्रपति (1962-1967) डॉ. राधाकृष्णन ने 'इंडियन फ़िलॉसफ़ी' (Indian Philosophy) जैसी पुस्तकों के माध्यम से अद्वैत वेदांत (Advaita Vedanta) की आधुनिक, तर्कसंगत व्याख्या प्रस्तुत की और पूर्व-पश्चिम दार्शनिक संवाद के सबसे बड़े सेतु माने जाते हैं।

◆ **अंतर्ज्ञान बनाम बुद्धि (Intuition vs Intellect)** — राधाकृष्णन के अनुसार तार्किक बुद्धि (Intellect) सत्य को केवल आंशिक रूप से समझ सकती है, जबकि आध्यात्मिक अंतर्ज्ञान (Intuition) ही परम सत्य का प्रत्यक्ष व समग्र अनुभव करा सकता है।

◆ **शिक्षक-दिवस (5 सितंबर)** — उनके जन्मदिवस को पूरे भारत में शिक्षक-दिवस के रूप में मनाया जाता है, जो शिक्षकों की समाज-निर्माण में भूमिका के प्रति उनकी गहरी आस्था को दर्शाता है।

शिक्षा और शिक्षक पर राधाकृष्णन: डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार "शिक्षा केवल जीविका कमाने का साधन नहीं, बल्कि मूल्यों की सही पहचान के लिए मानव-आत्मा का प्रशिक्षण है।" वे ऐसी समग्र शिक्षा में विश्वास करते थे, जो आध्यात्मिक मूल्यों को जोड़े और आंतरिक सामंजस्य बढ़ाए। वे शिक्षक को नैतिक मार्गदर्शक और आदर्श मानते थे — शिक्षक को वही मूल्य स्वयं जीने चाहिए जो वह सिखाना चाहता है। उनका अपना जीवन प्रज्ञा, करुणा और समर्पण का उदाहरण था। इसी परंपरा में कोल्हापुर के छत्रपति शाहू महाराज (1874-1922) — कोल्हापुर रियासत के शासक, जिन्होंने 1902 में अपनी रियासत की सरकारी नौकरियों में पिछड़े वर्गों के लिए 50% आरक्षण दिया — ने सबके लिए, विशेषकर वंचितों के लिए स्कूल खोले, और डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम (भारत के 11वें राष्ट्रपति और 'मिसाइल मैन' के नाम से प्रसिद्ध वैज्ञानिक) ने कहा कि शिक्षक का लक्ष्य चरित्र-निर्माण होना चाहिए।

13.3 अमर्त्य सेन (जन्म 1933) — क्षमता उपागम

शांतिनिकेतन (पश्चिम बंगाल) में जन्मे अर्थशास्त्री-दार्शनिक अमर्त्य सेन 'डेवलपमेंट ऐज़ फ़्रीडम' (Development as Freedom, 1999) और 'द आइडिया ऑफ़ जस्टिस' (The Idea of Justice, 2009) जैसी पुस्तकों के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्हें 1998 में अर्थशास्त्र के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया — उन्होंने कल्याण-अर्थशास्त्र (Welfare Economics) व सामाजिक-चयन सिद्धांत (Social Choice Theory) में उपयोगितावाद व रॉल्स के सिद्धांत, दोनों की सीमाओं को उजागर करते हुए एक नया, ज़्यादा मानवीय दृष्टिकोण दिया।

आसान परिभाषा: क्षमता उपागम (Capability Approach)

परिभाषा: सेन के अनुसार विकास व कल्याण को केवल आय/संसाधनों (जैसे GDP) से नहीं मापा जाना चाहिए, बल्कि यह देखा जाना

चाहिए कि व्यक्ति के पास वास्तव में वह 'जीवन जीने की क्षमता व स्वतंत्रता' (Capability) है या नहीं, जिसे वह जीना चाहता है — जैसे शिक्षित होने, स्वस्थ रहने व सम्मानपूर्वक जीने की वास्तविक क्षमता।

💡 आसान भाषा में: जैसे दो लोगों के पास बराबर पैसा हो, पर अगर एक बीमार है और दूसरा स्वस्थ, तो असल 'भलाई' दोनों की एक-समान नहीं है — सिर्फ पैसा गिनने से यह भेद नहीं दिखता, इसीलिए सेन कहते हैं कि 'वास्तविक क्षमता व अवसर' को देखना ज़्यादा ज़रूरी है, न कि सिर्फ आय को। **🏠 उदाहरण:** मानव विकास सूचकांक (Human Development Index - HDI), सतत विकास लक्ष्य (SDGs), दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम (RPWD Act) व आयुष्मान भारत जैसी योजनाएँ — सभी सेन के 'क्षमता उपागम' से प्रेरित होकर सिर्फ आय नहीं, बल्कि स्वास्थ्य, शिक्षा व गरिमा-पूर्ण जीवन की वास्तविक क्षमता बढ़ाने पर केंद्रित हैं।

- ◆ उपयोगितावाद की आलोचना — सेन का तर्क है कि उपयोगितावाद केवल 'कुल सुख' गिनता है, यह नहीं देखता कि यह सुख कितने न्यायपूर्ण ढंग से बाँटा है।
- ◆ रॉल्स की आलोचना — सेन का तर्क है कि रॉल्स सिर्फ 'संसाधनों' (Primary Goods) के वितरण पर ध्यान देते हैं, पर यह नहीं देखते कि अलग-अलग व्यक्ति समान संसाधनों को असमान 'क्षमता' में बदल पाते हैं या नहीं (जैसे एक दिव्यांग व एक सामान्य व्यक्ति के लिए बराबर पैसा बराबर 'क्षमता' नहीं देता)।

सेन की विशिष्टता: उपयोगितावाद केवल "सुख" गिनता है और रॉल्स मुख्यतः "संसाधन"; सेन इन दोनों से आगे बढ़कर **वास्तविक मानवीय स्वतंत्रता और क्षमता** को केंद्र में रखते हैं।

14. दयानंद सरस्वती, राजा राम मोहन राय एवं डॉ. आंबेडकर

14.1 स्वामी दयानंद सरस्वती (1824-1883)

गुजरात के टंकारा में जन्मे स्वामी दयानंद सरस्वती आर्य समाज (स्थापना 1875) के संस्थापक थे और उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' है। उन्होंने हिंदू धर्म में व्याप्त कुरीतियों (मूर्ति-पूजा, जाति-प्रथा की कठोरता, बाल-विवाह) के विरुद्ध सुधारवादी आंदोलन चलाया — उनका प्रसिद्ध नारा था 'वेदों की ओर लौटो' (Back to the Vedas), यानी मूल वैदिक शिक्षाओं की शुद्ध, तर्कसंगत पुनर्व्याख्या।

🔍 आसान परिभाषा: गुण-कर्म-स्वभाव आधारित वर्ण-व्यवस्था

📖 परिभाषा: दयानंद सरस्वती के अनुसार वर्ण (जाति) जन्म से नहीं, बल्कि व्यक्ति के गुण (योग्यता), कर्म (कार्य) व स्वभाव (प्रवृत्ति) से तय होना चाहिए — यह जन्म-आधारित कठोर जाति-व्यवस्था का सीधा खंडन था।

💡 आसान भाषा में: जैसे किसी स्कूल में बच्चों को उनकी रुचि व योग्यता देखकर अलग-अलग विषय चुनने दिए जाएँ, न कि उनके माता-पिता के पेशे के आधार पर पहले से तय कर दिया जाए — दयानंद जी का यही तर्क था कि समाज में भूमिका जन्म से नहीं, बल्कि योग्यता व कर्म से तय होनी चाहिए। **🏠 उदाहरण:** आधुनिक भारत में योग्यता-आधारित शिक्षा व रोज़गार प्रणाली (जैसे प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से चयन) दयानंद सरस्वती के 'गुण-कर्म-स्वभाव' सिद्धांत की ही आधुनिक अभिव्यक्ति मानी जा सकती है।

14.2 राजा राम मोहन राय (1772-1833) — भारतीय पुनर्जागरण के जनक

बंगाल के राधानगर में जन्मे राजा राम मोहन राय को 'भारतीय पुनर्जागरण का जनक' (Father of the Indian Renaissance) कहा जाता है; 'राजा' की उपाधि उन्हें मुगल बादशाह अकबर द्वितीय ने दी थी। उन्होंने 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की — जो एकेश्वरवाद, मूर्ति-पूजा-विरोध व तर्कसंगत धार्मिक सुधार पर आधारित था।

- ◆ सती प्रथा का उन्मूलन — उनके अथक प्रयासों से ही 1829 में 'सती निषेध विनियमन' (Bengal Sati Regulation, 1829) पारित हुआ, जिसने विधवाओं को जबरन सती होने से बचाने हेतु कानूनी आधार दिया।
- ◆ स्त्री-शिक्षा व विधवा-पुनर्विवाह के प्रबल समर्थक — महिलाओं की सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए निरंतर प्रयासरत रहे।
- ◆ प्रेस की स्वतंत्रता व आधुनिक शिक्षा (अंग्रेज़ी-पाश्चात्य शिक्षा सहित) के प्रबल पक्षधर।

राम मोहन राय — "आधुनिक भारत के निर्माता": उन्होंने **द्वारकानाथ टैगोर** (रवींद्रनाथ टैगोर के दादा और बंगाल के प्रसिद्ध उद्योगपति) जैसे प्रमुख बंगालियों के साथ मिलकर **ब्रह्म समाज** को आगे बढ़ाया, जिसने बंगाल के पुनर्जागरण की गति तय की। अठारहवीं सदी के अंत में बंगाल का समाज बाल-विवाह, बहुविवाह और सती जैसी कुरीतियों से ग्रस्त था। राम मोहन राय के प्रयासों और गवर्नर-जनरल **लॉर्ड विलियम बेंटिक** की सहानुभूति से, कट्टरपंथियों के भारी विरोध के बावजूद, **बंगाल सती विनियमन (विनियमन XVII, 1829)** पारित हुआ, जिसने सती प्रथा को दंडनीय अपराध बना दिया।

शिक्षा और धर्म-सुधार: उन्होंने गणित, भौतिकी, रसायन और वनस्पति-विज्ञान जैसे वैज्ञानिक विषयों वाली आधुनिक शिक्षा का समर्थन किया; **डेविड हेयर** (स्कॉटलैंड से कोलकाता आए घड़ीसाज़ और शिक्षा-प्रेमी) के साथ **हिंदू कॉलेज (1817)** की स्थापना के प्रयासों से जुड़े, और परंपरागत ज्ञान तथा आधुनिक तर्क को जोड़ने के लिए **एंग्लो-हिंदू स्कूल (1822)** और **वेदांत कॉलेज (1826)** की स्थापना की। उन्होंने पुरोहितों द्वारा प्रचारित अनावश्यक कर्मकांड और मूर्ति-पूजा का विरोध किया, विभिन्न धर्मों के ग्रंथों का अध्ययन किया और तर्क दिया कि उपनिषद् **एकेश्वरवाद** का समर्थन करते हैं।

14.3 डॉ. भीमराव आंबेडकर (1891-1956)

मध्य प्रदेश के महु में जन्मे डॉ. आंबेडकर — संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष और भारतीय संविधान के प्रमुख शिल्पकार — केवल एक विधिवेत्ता ही नहीं, बल्कि एक गहन सामाजिक-नैतिक दार्शनिक भी थे, जिनका पूरा जीवन जाति-आधारित भेदभाव के उन्मूलन को समर्पित था।

☀️ प्रामाणिक कथन — संविधान सभा में अंतिम भाषण (25 नवंबर 1949)

आंबेडकर ने चेतावनी दी कि स्वतंत्रता, समानता व बंधुत्व (Liberty, Equality, Fraternity) — इन तीनों में से किसी एक को भी दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता; यदि बंधुत्व (भाईचारा/Fraternity) के बिना केवल स्वतंत्रता व समानता को कानून के ज़रिए लागू किया जाए, तो वे मात्र ऊपरी परत (Veneer) बनकर रह जाएँगी और थोड़ी-सी भी परिस्थिति बदलने पर टूट सकती हैं।

- ◆ संविधानवाद को 'जीवन-पद्धति' मानना — आंबेडकर के अनुसार लोकतंत्र सिर्फ एक शासन-प्रणाली नहीं, बल्कि एक 'जीवन-शैली' (Way of Life) है, जिसका आधार सामाजिक व आर्थिक लोकतंत्र भी है, न कि केवल राजनीतिक लोकतंत्र।
- ◆ जाति-व्यवस्था का पूर्ण विरोध — अपनी कृति 'जाति का विनाश' (Annihilation of Caste) में उन्होंने तर्क दिया कि जाति-व्यवस्था को 'सुधारना' नहीं, बल्कि पूरी तरह समाप्त करना ही एकमात्र समाधान है (देखें अध्याय 5 — गांधी बनाम आंबेडकर तुलना)।
- ◆ 1956 में बौद्ध धर्म की दीक्षा — जाति-व्यवस्था को अस्वीकार करते हुए उन्होंने अपने लाखों अनुयायियों सहित बौद्ध धर्म अपनाया, जो समानता व करुणा पर आधारित था।

आंबेडकर का सामाजिक न्याय-दर्शन: आंबेडकर के अनुसार भारत में सामाजिक अन्याय की जड़ जाति-व्यवस्था थी, जिसने मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का वातावरण बनाया; उनका मानना था कि जाति के उन्मूलन से सामाजिक न्याय स्थापित किए बिना भारत में लोकतंत्र संभव नहीं। उन्हें विश्वास था कि उच्च वर्ग स्वयं इस व्यवस्था को नहीं तोड़ेंगे, और पश्चिमी शैली के लोकतंत्र की संस्थाएँ भी उनके नियंत्रण में रहेंगी — इसलिए उन्होंने वंचितों के लिए **संवैधानिक सुरक्षा और सभी लोकतांत्रिक संस्थाओं में सीधा प्रतिनिधित्व** माँगा। उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं — **"जाति का विनाश" (1936), "शूद्र कौन थे" (1946), "अछूत" (1948) और "बुद्ध और उनका धम्म" (1957, मरणोपरान्त प्रकाशित)**। उन्होंने मानवशास्त्रीय और नृवंशशास्त्रीय साक्ष्यों से यह भी तर्क दिया कि अस्पृश्यता का कोई नस्लीय या व्यावसायिक आधार नहीं था।

" मैं किसी समुदाय की प्रगति को उस समुदाय की महिलाओं द्वारा की गई प्रगति की मात्रा से मापता हूँ। (I measure the progress of a community by the degree of progress which women have achieved.) " — डॉ. भीमराव आंबेडकर (Dr. B.R. Ambedkar)

तीनों समाज-सुधारकों का साझा सूत्र: तीनों ने धार्मिक-सामाजिक कुरीतियों को तर्क और नैतिकता की कसौटी पर परखा — दयानंद: वेदों की तर्कसंगत व्याख्या; राम मोहन राय: सती जैसी कुप्रथा का अंत; आंबेडकर: जाति-व्यवस्था का समूल नाश। यह सुधार-चिंतन का एक क्रमिक विकास दिखाता है।

15. अन्य भारतीय विचारक एवं तुलनात्मक विश्लेषण

15.1 अन्य महत्वपूर्ण भारतीय विचारक — संक्षिप्त सार

गांधीजी का विस्तृत नैतिक-दर्शन पिछले अध्याय (अध्याय 5) में पहले ही कवर किया जा चुका है — यहाँ स्वतंत्रता आंदोलन के कुछ अन्य महत्वपूर्ण नैतिक-राजनीतिक विचारकों का संक्षिप्त सार दिया गया है।

विचारक	मुख्य नैतिक योगदान
सरदार वल्लभभाई पटेल	'लौह पुरुष' — प्रशासनिक अखंडता, दृढ़-निश्चय व राष्ट्रीय एकता (562 रियासतों का विलय) के प्रतीक; सिविल सेवा को 'भारत की स्टील फ्रेम' कहकर इसकी तटस्थता व निष्ठा पर बल दिया।
जवाहरलाल नेहरू	वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Temper), पंथनिरपेक्षता (Secularism) व लोकतांत्रिक समाजवाद के प्रबल पक्षधर।
जयप्रकाश नारायण (JP)	'संपूर्ण क्रांति' (Total Revolution) का आह्वान — सत्ता के विकेंद्रीकरण व भ्रष्टाचार-विरोध पर बल, सर्वोदय आंदोलन से गहरा जुड़ाव।

15.2 जवाहरलाल नेहरू — लोकतांत्रिक समाजवाद, स्वतंत्रता और पंथनिरपेक्षता

लोकतांत्रिक समाजवाद: भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू (1889-1964) — जिनकी पुस्तक 'द डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया' (The Discovery of India, 1946) प्रसिद्ध है — के अनुसार लोकतंत्र और समाजवाद एक और अविभाज्य हैं — सच्चे समाजवाद के बिना सच्चा लोकतंत्र नहीं, और सच्चे लोकतंत्र के बिना सच्चा समाजवाद नहीं। दोनों समानता, सामाजिक न्याय, सबके उचित हिस्से और धन तथा शक्ति के संतुलन को श्रमिकों और उनके परिवारों की ओर मोड़ने में मिलते हैं। **स्वतंत्रता:** उनके लिए स्वतंत्रता का अर्थ था — भाषण और अभिव्यक्ति, संगठन और रचनात्मकता की स्वतंत्रता; उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता की एक समेकित अवधारणा दी। **पंथनिरपेक्षता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण:** नेहरू तर्कवादी थे, जो मानवीय मूल्यों को धार्मिक रूढ़ियों से ऊपर मानते थे; **वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Temper)** पर उनका ज़ोर भारत में अंधविश्वास और धार्मिक रूढ़िवाद के विरुद्ध संघर्ष की शुरुआत था — यही बाद में अनुच्छेद 51(ज) का मौलिक कर्तव्य बना।

15.3 सरदार वल्लभभाई पटेल — "लौह पुरुष" का नैतिक-राजनीतिक दर्शन

31 अक्टूबर 1875 को गुजरात के नडियाद में जन्मे पटेल ने इंग्लैंड से कानून की पढ़ाई (1910-1913) पूरी की। अंग्रेज़ सरकार ने उन्हें कई आकर्षक पद देने चाहे, पर उन्होंने सब ठुकरा दिए। 1917 से 1950 तक वे भारतीय राजनीति के केंद्र में रहे; स्वतंत्रता के बाद गृह और रियासत विभाग संभालते हुए उन्होंने **विभाजन के बाद नौकरशाही का पुनर्गठन** किया और **रियासतों का एकीकरण** किया। वे मौलिक अधिकारों और स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक थे, शोषण, सत्ता की मनमानी और रियासतों के कुशासन के विरुद्ध आवाज़ उठाते थे; उन्होंने शराबबंदी, अस्पृश्यता और जातिगत भेदभाव के

विरुद्ध तथा महिला-मुक्ति के लिए काम किया। उनका राजनीतिक मूल्य-तंत्र उदारवाद, रुढ़िवाद और कल्याणवाद का सुंदर संश्लेषण था — वे राष्ट्र को "संरचना में लोकतांत्रिक, नींव में राष्ट्रवादी और भावना तथा कार्य में कल्याणकारी" देखते थे।

☀ मदन टेरसा — "पूरे मन से और निःशुल्क सेवा" का चौथा व्रत

मदन टेरसा (1910–1997) — जो आज के उत्तर मैसोडोनिया के स्कोप्ये नगर में एक अल्बानियाई परिवार में जन्मी थीं और बाद में भारत की नागरिक बनीं — ने अपना जीवन दुनिया-भर के गरीबों और असहायों की सेवा को समर्पित किया। उन्होंने गरीबी, ब्रह्मचर्य और आज्ञाकारिता के तीन व्रतों के साथ एक चौथा व्रत भी लिया — "गरीबों की पूरे मन से और निःशुल्क सेवा।" 1950 में उन्होंने कोलकाता में 12 सदस्यों के साथ **मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटी** की स्थापना की; 1952 में **कालीघाट** में एक पुराने, खाली पड़े मंदिर-भवन में भारतीय अधिकारियों की मदद से असहाय और मरणासन्न लोगों के लिए "**निर्मल हृदय**" शुरू किया, जहाँ लोगों को अपनी आस्था के अनुसार सम्मान से अंतिम समय बिताने का अवसर मिला। 1955 में अनाथ बच्चों के लिए "**निर्मला शिशु भवन**" खुला।

उन्होंने कुछ रोग के प्रति जनता का डर दूर करने के लिए जागरूकता अभियान चलाए और घर-घर दवा पहुँचाने वाले चलते-फिरते कुछ-क्लिनिक शुरू किए। उनका विश्वास था कि **कोई पीछे न छोटे और हर व्यक्ति को यह महसूस हो कि वह चाहा और प्यार किया जाता है**। 1979 में उन्हें **नोबेल शांति पुरस्कार** और 1980 में **भारत रत्न** मिला; 2016 में रोमन कैथोलिक चर्च ने उन्हें "संत टेरसा" घोषित किया।

15.4 तुलनात्मक विश्लेषण — भारतीय बनाम पाश्चात्य नैतिकता

भारतीय नैतिक-दृष्टिकोण की विशेषताएँ	पाश्चात्य नैतिक-दृष्टिकोण की विशेषताएँ
◆ आध्यात्मिकता व कर्तव्य (धर्म) पर केंद्रित — व्यक्तिगत मोक्ष व सामाजिक कल्याण दोनों साथ-साथ।	◆ तर्क व तार्किक विश्लेषण (Rational Analysis) पर आधारित — व्यवस्थित सिद्धांत व वर्गीकरण।
◆ समग्रता (Holism) — व्यक्ति, समाज व प्रकृति को परस्पर-जुड़ा हुआ मानना (जैसे वसुधैव कुटुम्बकम्)।	◆ व्यक्तिवाद (Individualism) — व्यक्तिगत अधिकार व स्वतंत्रता पर विशेष बल।
◆ निष्काम कर्म — फल की चिंता किए बिना कर्तव्य-पालन पर बल (गीता का कर्मयोग)।	◆ परिणाम या नियम पर केंद्रित बहस — उपयोगितावाद बनाम कर्तव्यवाद जैसा स्पष्ट विभाजन।
◆ गुरु-शिष्य परंपरा — नैतिक शिक्षा मौखिक/अनुभव-आधारित परंपरा से हस्तांतरित।	◆ लिखित, व्यवस्थित ग्रंथों (जैसे निकोमेकियन एथिक्स) के माध्यम से सैद्धांतिक विकास।

15.5 भारतीय नीतिशास्त्र — विशेषताएँ और प्रमुख संप्रदाय

भारत में दर्शन को "**दर्शन**" कहा जाता है, जिसका अर्थ है "**देखना**" और देखने का साधन — भारतीय दर्शन परम सत्य के प्रत्यक्ष अनुभव की इच्छा से निकलता है, जबकि यूनानी शब्द "फ़िलॉसॉफी" का अर्थ है "**प्रज्ञा का प्रेम**"। पश्चिमी दर्शन में नीतिशास्त्र एक **बौद्धिक जाँच** है, जबकि भारतीय दृष्टि में यह **परम सत्य को पाने की जीवन-पद्धति** है। भारतीय दृष्टि में व्यक्ति का दायित्व केवल मानव-समाज तक सीमित नहीं, बल्कि **समस्त प्राणी-जगत तक फैला** है — "अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम करो, और हर जीव तुम्हारा पड़ोसी है।"

भारतीय दर्शन के संप्रदाय



चित्र 6.21: भारतीय दर्शन के संप्रदाय

भारतीय नीतिशास्त्र की विशेषता	अर्थ
सबसे प्राचीन	सभ्यता के इतिहास का सबसे पुराना नैतिक दर्शन; इसी कारण अनुयायियों के व्यावहारिक जीवन में गहराई से रचा-बसा।
व्यावहारिक	केवल आदर्शों की चर्चा नहीं, उन तक पहुँचने का मार्ग भी — योग, जैन और बौद्ध अनुयायियों ने हज़ारों वर्ष तक आचरण-नियमों का पालन किया।
तत्त्वमीमांसीय आधार	सिद्धांत और व्यवहार का संश्लेषण; बौद्धिकता और नैतिकता आत्मा की उड़ान के दो पंख।
निरपेक्ष और आध्यात्मिक	सुख-दुःख, यहाँ तक कि सही-गलत से भी परे जाकर परम सत्य का साक्षात्कार; आध्यात्मिक अनुशासन से प्राप्य।

भारतीय नीतिशास्त्र की विशेषता	अर्थ
मानवतावादी	व्यक्ति के भीतरी-बाहरी और व्यक्तिगत-सामाजिक जीवन में संतुलन; व्यक्तिगत प्रगति और सामाजिक कल्याण साथ-साथ।
सर्व-जीव करुणा	अहिंसा, प्रेम और करुणा केवल मनुष्यों के लिए नहीं — पौधों, पक्षियों, पशुओं और हर जीव के लिए।
कर्म का नियम	हर अच्छा-बुरा कर्म अपना फल देता है — यह "नैतिक मूल्यों के संरक्षण का नियम" है; चार्वाक को छोड़कर सभी संप्रदाय इसे मानते हैं।

बौद्ध नीतिशास्त्र — पंचशील: बौद्ध नैतिकता करुणामय और मानवतावादी है। इसकी मूल संहिता **पाँच शील** हैं — जो आदेश नहीं, बल्कि स्वेच्छा से अपनाए जाने वाले **"प्रशिक्षण के सिद्धांत"** हैं। बौद्ध परंपरा कर्मों को "सही-गलत" के बजाय **"कुशल" या "अकुशल"** कहती है। हर शील का एक सकारात्मक रूप भी है: (1) प्राणियों को हानि न पहुँचाना — सकारात्मक रूप **प्रेम**; (2) जो दिया न गया हो उसे न लेना (शोषण, छल भी इसमें) — **उदारता**; (3) यौन दुराचार से बचना — **संतोष**; (4) असत्य वचन से बचना — **सत्यवादिता**; (5) मद्य और नशे से बचना — **सजगता (Mindfulness)**।

जैन नीतिशास्त्र: जैन नैतिकता का लक्ष्य व्यक्ति की **मुक्ति** है; इसका प्राथमिक उपदेश राजा और प्रजा दोनों के लिए है — **"अपना कर्तव्य करो, और उसे यथासंभव मानवीयता से करो।"** यह पाँच महाव्रतों — अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह — पर आधारित है, जिनका पालन **मन, वचन और शरीर** तीनों से होता है। जैन धर्म नैतिक आचरण के लिए ईश्वर के भय या आदेश का सहारा नहीं लेता; इसका पालन आत्म-मुक्ति के लिए है। **चार्वाक (लोकायत):** यह नास्तिकता, भौतिकवाद और सुखवाद का समर्थक भारत का अनूठा संप्रदाय है — इसके अनुसार केवल यही लोक है; यह धर्म और मोक्ष को पुरुषार्थ नहीं मानता, **काम** (इंद्रिय-सुख) को जीवन का प्राथमिक लक्ष्य और **अर्थ** को उसका साधन मानता है। चार्वाक की मूल रचनाएँ उपलब्ध नहीं; हम उन्हें दूसरे दार्शनिकों की आलोचनाओं से जानते हैं।

15.6 तुलनात्मक विश्लेषण — कर्तव्यवाद बनाम परिणामवाद (सार-संक्षेप)

आधार	कर्तव्यवाद (Deontology — कांट)	परिणामवाद (Consequentialism — बेन्थम/मिल)
नैतिकता की कसौटी	कार्य के पीछे की नीयत/नियम।	कार्य से उत्पन्न परिणाम।
लचीलापन	कम — नियम निरपेक्ष होते हैं।	अधिक — परिस्थिति अनुसार बदल सकता है।
मुख्य आलोचना	अत्यधिक कठोर, वास्तविक जीवन में कठिन।	अल्पसंख्यक/व्यक्ति के अधिकारों की अनदेखी संभव।
प्रशासनिक अनुप्रयोग	संवैधानिक शपथ, आचार-संहिता, नियम-पालन।	जन-कल्याण नीतियाँ, संसाधन-आवंटन।

भारतीय और पाश्चात्य नैतिकता परस्पर-विरोधी नहीं, बल्कि **एक-दूसरे की पूरक** हैं — जैसे गीता का निष्काम कर्मयोग कांट के "कर्तव्य के लिए कर्तव्य" से गहराई से मेल खाता है।

16. शासन और कर्तव्य के विचारक — ब्रैडले, वेबर, कौटिल्य एवं अन्य

कुछ ऐसे विचारक व अवधारणाएँ हैं, जो लोक प्रशासन की नैतिकता के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं, पर पारंपरिक रूप से 'नैतिक विचारक' अध्याय में अक्सर छूट जाती हैं। इस अनुभाग में उन्हें विशेष रूप से जोड़ा गया है ताकि अध्याय पूर्ण (Complete) बने।

16.1 एफ.एच. ब्रैडले (F.H. Bradley, 1846-1924) — 'मेरा स्थान और तत्संबंधी कर्तव्य'

ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय से जुड़े ब्रिटिश आदर्शवादी (Idealist — यह मानने वाले कि व्यक्ति किसी बड़े 'संपूर्ण', जैसे समाज, का अंग है और उसी से अर्थ पाता है) दार्शनिक एफ.एच. ब्रैडले ने अपनी कृति 'एथिकल स्टडीज़' (Ethical Studies, 1876) में यह तर्क दिया कि कांट या बेन्थम जैसे विचारकों का 'अलग-थलग, अमूर्त व्यक्ति' (Abstract Individual) एक काल्पनिक धारणा है — असल में हर व्यक्ति का 'स्व' (Self) उसके सामाजिक संबंधों (परिवार, समुदाय, पद, पेशा) से ही बनता व परिभाषित होता है।

🔍 आसान परिभाषा: मेरा स्थान और तत्संबंधी कर्तव्य (My Station and Its Duties)

📖 **परिभाषा:** ब्रैडले के अनुसार नैतिकता कोई अमूर्त सार्वभौमिक नियम (कांट) या सुख का हिसाब-किताब (बेन्थम) नहीं, बल्कि समाज में व्यक्ति जिस 'पद/स्थान' (Station) पर है — जैसे पिता, नागरिक, अधिकारी — उससे जुड़े कर्तव्यों को निभाना ही सच्ची नैतिकता है। व्यक्ति व समाज कोई दो अलग-अलग चीज़ें नहीं, बल्कि एक ही 'सामाजिक जीव' (Social Organism) के अंग हैं।

💡 **आसान भाषा में:** जैसे शरीर का हर अंग (हाथ, पैर, हृदय) अपने-अपने निर्धारित कार्य को निभाकर ही पूरे शरीर को स्वस्थ रखता है, न कि यह सोचकर कि 'मैं शरीर से अलग होकर अपना अच्छा कैसे करूँ' — ठीक वैसे ही ब्रैडले कहते हैं कि हर व्यक्ति को समाज-रूपी शरीर में अपने 'पद' का कर्तव्य निभाना ही उसकी सच्ची नैतिकता है। 🏠 **उदाहरण:** एक सिविल सेवक के लिए इसका सीधा अर्थ है — उसका पहला नैतिक दायित्व वही है जो उसके 'पद' (जैसे उपखंड अधिकारी, कलेक्टर) से जुड़ा है; उसे अपने पद की सीमाओं व ज़िम्मेदारियों से बंधकर ही कार्य करना है, न कि पद से परे जाकर मनमाना निर्णय लेना।

ब्रैडले का यह विचार जर्मन दार्शनिक हीगल (Hegel, 1770-1831 — जिनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ राइट' (Philosophy of Right, 1820) है) की अवधारणा 'सित्लिक्काइट' (Sittlichkeit — संस्थाओं/समाज में जीया गया व्यावहारिक नैतिक जीवन) से प्रभावित है, जिसे हीगल कांट की 'मोरालिटैट' (Moralität — अमूर्त, व्यक्तिगत नैतिकता) के विपरीत रखते थे। हालाँकि ब्रैडले स्वयं इसे अपना अंतिम निष्कर्ष

नहीं मानते थे — उनके लिए यह एक ज़रूरी पड़ाव था, आत्म-सिद्धि (Self-Realization) के व्यापक 'नैतिक आदर्श' (Moral Ideal) तक पहुँचने के रास्ते में।

◆ आलोचना 1 — यह सिद्धांत नैतिक सापेक्षवाद (Moral Relativism) की ओर ले जा सकता है — अगर समाज/पद ही नैतिकता तय करे, तो एक अन्यायपूर्ण व्यवस्था (जैसे भ्रष्ट प्रशासनिक ढाँचा) में 'सुधार' या असहमति की गुंजाइश खत्म हो जाती है।

◆ आलोचना 2 — जब किसी व्यक्ति के दो 'पदों' के कर्तव्यों में टकराव हो (जैसे एक अधिकारी का 'नागरिक' के रूप में कर्तव्य बनाम 'अधिकारी' के रूप में कर्तव्य), तो यह सिद्धांत स्पष्ट मार्गदर्शन नहीं देता — यहाँ डब्ल्यू.डी. रॉस के 'प्रथम-दृष्ट्या कर्तव्य' सिद्धांत (देखें अनुभाग 9.3) की ज़रूरत पड़ती है।

"मेरा स्थान और तत्संबंधी कर्तव्य" — दो तुलनाएँ: (1) गीता के स्वधर्म (अपनी स्थिति के अनुरूप कर्तव्य) से समानता; (2) कांट के निरपेक्ष, सार्वभौमिक कर्तव्य से अंतर — ब्रैडले का कर्तव्य सापेक्ष और पद-आधारित है, कांट का निरपेक्ष और सार्वभौमिक।।

16.2 मैक्स वेबर (Max Weber, 1864-1920) — नौकरशाही एवं नैतिकता

जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर — जिनकी प्रसिद्ध रचनाएँ 'द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज़्म' (1905) और 'राजनीति एक व्यवसाय के रूप में' (Politics as a Vocation, 1919) हैं — को 'आधुनिक नौकरशाही सिद्धांत' (Bureaucracy Theory) का जनक माना जाता है — उन्होंने एक आदर्श नौकरशाही (Ideal Bureaucracy) की विशेषताएँ बताईं: पद-सोपान (Hierarchy), नियम-आधारित कार्य (Rule-based), अवैयक्तिकता (Impersonality) व योग्यता-आधारित नियुक्ति (Merit-based)।

आसान परिभाषा: उत्तरदायित्व का नीतिशास्त्र बनाम आस्था का नीतिशास्त्र (Ethic of Responsibility vs Ethic of Conviction)

■ परिभाषा: वेबर ने 1919 के अपने व्याख्यान 'राजनीति एक व्यवसाय के रूप में' में ये दो प्रकार बताए। उनके अनुसार एक लोक सेवक को अपने व्यक्तिगत नैतिक आदर्शों/आस्था (Ethic of Conviction — Gesinnungsethik) की जगह, अपने निर्णयों के वास्तविक/व्यावहारिक परिणामों के प्रति उत्तरदायित्व (Ethic of Responsibility — Verantwortungsethik) को प्राथमिकता देनी चाहिए।

💡 आसान भाषा में: जैसे एक डॉक्टर सिर्फ यह नहीं सोचता कि 'मेरी व्यक्तिगत मान्यता क्या कहती है', बल्कि यह सोचता है कि 'मेरे इस इलाज का मरीज़ पर वास्तव में क्या असर पड़ेगा' — वेबर कहते हैं कि लोक सेवकों को भी अपने निजी विश्वासों से ज़्यादा, निर्णय के व्यावहारिक परिणामों की ज़िम्मेदारी लेनी चाहिए। 🏠 उदाहरण: एक अधिकारी जो अपनी निजी विचारधारा या मान्यता के आधार पर नहीं, बल्कि नियम, प्रक्रिया व नीति के दीर्घकालिक व्यावहारिक परिणामों को ध्यान में रखकर निर्णय लेता है (जैसे किसी अलोकप्रिय पर आवश्यक विकास-परियोजना को मंजूरी देना), वह वेबर के 'उत्तरदायित्व का नीतिशास्त्र' का पालन करता है।

वेबर — आस्था बनाम उत्तरदायित्व का नीतिशास्त्र

आस्था (Conviction)	बनाम	उत्तरदायित्व (Responsibility)
क्या मेरा सिद्धांत सही है?	मूल प्रश्न	मेरे निर्णय का परिणाम क्या होगा?
नीयत की शुद्धता	केंद्र	परिणाम की ज़िम्मेदारी
हठधर्मिता	ख़तरा	सिद्धांतहीनता
मूल्य दिशा दें	लोक सेवक के लिए	निर्णय परिणाम देखकर लें

चित्र 6.22: वेबर — आस्था बनाम उत्तरदायित्व का नीतिशास्त्र

वेबर की नौकरशाही की आलोचना: अत्यधिक नियम-केंद्रित और अवैयक्तिक व्यवस्था कई बार संवेदनशीलता और लचीलेपन की कमी की ओर ले जाती है, जिसे लालफ़ीताशाही (Red-Tapism) कहा जाता है। इसलिए वेबर के गुण और सीमा, दोनों को साथ देखना ज़रूरी है।

16.3 कौटिल्य/चाणक्य — अर्थशास्त्र में राजधर्म एवं सप्तांग सिद्धांत

आचार्य कौटिल्य (चाणक्य, लगभग चौथी शताब्दी ईसा पूर्व) चंद्रगुप्त मौर्य के गुरु और मंत्री थे तथा राज्य-संचालन पर लिखे ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' के रचयिता हैं। उनका 'दो दीपकों' (राजकीय तेल व निजी तेल कभी न मिलाना) वाला प्रोबिटी (Probity — ईमानदारी व सत्यनिष्ठा) प्रसंग इस श्रृंखला के पहले के एक अध्याय (निजी-सार्वजनिक संबंध व प्रोबिटी) में विस्तार से कवर हो चुका है — यहाँ उनके व्यापक राजनीतिक-नैतिक दर्शन को एक विचारक के रूप में संक्षेप में देखते हैं।

◆ सप्तांग सिद्धांत (Saptanga Theory) — राज्य के 7 अनिवार्य अंग: स्वामी (राजा), अमात्य (मंत्री), जनपद (क्षेत्र-प्रजा), दुर्ग (किला), कोष (खज़ाना), दंड (सेना/कानून-व्यवस्था) व मित्र (सहयोगी) — एक कल्याणकारी व स्थिर राज्य के लिए इन सातों अंगों का स्वस्थ रहना अनिवार्य है।

◆ राजधर्म (राजा का कर्तव्य) — "प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है, प्रजा के हित में ही राजा का हित है" — यह विचार आधुनिक 'जन-केंद्रित शासन' (Citizen-Centric Governance) की नींव जैसा प्रतीत होता है।

◆ दंड-नीति (Theory of Punishment) — कौटिल्य के अनुसार राज्य में उचित दंड-व्यवस्था के बिना अराजकता (मात्स्य-न्याय — बड़ी मछली छोटी को खा जाए) फैल जाती है, इसलिए न्यायसंगत व निष्पक्ष दंड-व्यवस्था शासन की आधारशिला है।

राज्य की भूमिका और भ्रष्टाचार पर कौटिल्य: कौटिल्य के अनुसार राज्य के चार प्रमुख कार्य हैं — सुरक्षा, क़ानून-व्यवस्था बनाए रखना, सामाजिक व्यवस्था की रक्षा और जनकल्याण। अर्थशास्त्र में उन्होंने अनैतिक आचरण के परिणामों का कठोर विश्लेषण किया — उन्होंने राजकोष से "धन-हरण के चालीस तरीक़े" गिनाए और चेतावनी दी कि एक भ्रष्ट अधिकारी केवल धन नहीं चुराता, बल्कि "प्रजा के महत्वपूर्ण हितों को खा जाता है"; अनैतिक शासन का अंतिम परिणाम राज्य का पतन और विनाश है। उन्होंने यह भी चेतावनी दी कि जो अधिकारी अपने संबंधियों का पक्ष लेते हैं या निजी संबंधों से प्रभावित होते हैं, वे राजकोष और न्याय-व्यवस्था के लिए ख़तरा हैं — इसलिए गुप्तचरों और कड़ी निगरानी की व्यवस्था का समर्थन किया। **प्रशासनिक अर्थ:** एक अधिकारी का अनैतिक कर्म केवल उसी तक सीमित नहीं रहता — यह पूरी सिविल सेवा, यानी "स्टील फ़्रेम" की छवि को धूमिल करता है और हज़ारों ईमानदार अधिकारियों का काम कठिन बना देता है।

आधार	कौटिल्य	प्लेटो	मैकियावेली
दृष्टि	यथार्थवाद	आदर्शवाद	यथार्थवाद
राज्य का केंद्र	सुशासन, योगक्षेम	सामान्य हित (Common Good)	सत्ता और स्थिरता
राजा कैसा हो	सद्गुणी, प्रशिक्षित	सद्गुणी दार्शनिक राजा	चतुर, आवश्यकता पर कठोर
व्यक्ति और राज्य की नैतिकता	अलग मानते थे	एक ही मानते थे — आत्मा और राज्य दोनों में न्याय का अर्थ एक-सा है	अलग मानते थे
युद्ध में छल और लचीलापन	समर्थक	न्याय को सर्वोपरि माना; केवल शासकों के "उदात्त झूठ" (Noble Lie) को समाज-हित में सीमित रूप से स्वीकार किया	समर्थक
प्रवृत्ति	राजनीति और राज्यकला पर अधिक	शुद्ध दार्शनिक	राजनीति पर केंद्रित

16.4 अन्य धार्मिक-आध्यात्मिक विचारक

विचारक	मुख्य नैतिक शिक्षा	प्रशासनिक प्रासंगिकता
गौतम बुद्ध (Buddha)	अष्टांगिक मार्ग, मध्यम मार्ग (Middle Path), करुणा (Compassion)।	अति-कठोरता व अति-शिथिलता के बीच संतुलित प्रशासनिक निर्णय।
महावीर (Mahavir)	अहिंसा, अनेकांतवाद (बहु-दृष्टिकोण स्वीकृति), अपरिग्रह (अनावश्यक संग्रह से मुक्ति)।	नीति-निर्माण में विभिन्न पक्षों/दृष्टिकोणों को सुनने की क्षमता (अनेकांतवाद)।
गुरु नानक देव जी	समानता (सभी मनुष्य समान), सेवा (निःस्वार्थ सेवा), वंड छको (बाँटकर खाना)।	समावेशी शासन व सामुदायिक सेवा-भावना (जैसे लंगर व्यवस्था की भावना)।
तिरुवल्लुवर (Thiruvalluvar)	'तिरुक्कुरल' ग्रंथ — धर्म (सद्गुण), अर्थ (सम्पत्ति) व काम (प्रेम) पर तमिल नैतिक-काव्य।	शासक के गुण — न्यायप्रियता, करुणा व आत्म-अनुशासन पर बल।

16.5 शासन, अर्थव्यवस्था और समाज के आधुनिक चिंतक

लोक प्रशासन की नैतिकता को समझने में कई आधुनिक चिंतकों के विचार बहुत उपयोगी हैं। नीचे उनके मुख्य विचार और प्रशासनिक प्रासंगिकता दी गई है:

चिंतक	मुख्य विचार	प्रशासनिक प्रासंगिकता
जेम्स मैडिसन (James Madison, 1751–1836; अमेरिका के चौथे राष्ट्रपति)	अमेरिकी संविधान के प्रमुख निर्माता; सत्ता के केंद्रीकरण और दुरुपयोग को रोकने के लिए नियंत्रण और संतुलन — "महत्वाकांक्षा को महत्वाकांक्षा से संतुलित करो।"	क्षैतिज जवाबदेही — न्यायपालिका, संसद, कार्यपालिका का परस्पर नियंत्रण
मॉन्टेस्क्यू (Montesquieu, 1689–1755; फ्रांस; 'द स्पिरिट ऑफ़ लॉज़', 1748)	शक्ति-पृथक्करण का सिद्धांत; राजनीतिक संरचना के साथ "क़ानूनों की आत्मा" भी शासन को आकार देती है।	संवैधानिक संस्थाओं की स्वतंत्रता
तिरुवल्लुवर (Thiruvalluvar)	तिरुक्कुरल — शासक की नैतिक शुद्धता और प्रभावी शासन का अटूट संबंध; न्याय, करुणा, सत्यनिष्ठा से ही राज्य की समृद्धि।	नैतिक नेतृत्व
कार्ल पॉपर (Karl Popper, 1902–1994; ऑस्ट्रिया में जन्मे ब्रिटिश दार्शनिक; 'द ओपन सोसाइटी एंड इट्स एनिमीज़',	"खुला समाज" — बंद, सर्वसत्तावादी व्यवस्थाओं के विपरीत; स्वतंत्र समाज पारदर्शिता, निरंतर जाँच और सूचना के मुक्त प्रवाह पर पनपता है।	पारदर्शिता, सूचना का अधिकार

चिंतक	मुख्य विचार	प्रशासनिक प्रासंगिकता
1945)		
एमिल दुर्खीम (Émile Durkheim, 1858–1917; फ्रांसीसी समाजशास्त्री)	"सामूहिक चेतना" — समाज अपनी संस्थाओं (धर्म, शिक्षा) के माध्यम से व्यक्ति में नैतिक नियम आत्मसात कराता है, जिससे सामाजिक एकता बनती है।	संस्थाओं द्वारा मूल्य-निर्माण
एडम स्मिथ (Adam Smith, 1723–1790; स्कॉटलैंड के अर्थशास्त्री, 'अर्थशास्त्र के जनक')	"वैलथ ऑफ़ नेशंस" (1776) में "अदृश्य हाथ" — स्व-हित का पीछा अनजाने में समाज को लाभ देता है; पर "थ्योरी ऑफ़ मॉरल सेंटिमेंट्स" (1759) में कहा कि बाज़ार भरोसे और न्याय जैसे नैतिक गुणों पर टिका है।	बाज़ार और नैतिकता का संतुलन
मिल्टन फ्रीडमैन (1912–2006, अमेरिकी अर्थशास्त्री) बनाम आर. एडवर्ड फ्रीमैन (अमेरिकी प्रबंधन-विचारक)	फ्रीडमैन — "व्यवसाय का सामाजिक दायित्व केवल लाभ बढ़ाना है" (शेयरधारक-प्रधानता); फ्रीमैन — हितधारक सिद्धांत : कंपनी की सफलता कर्मचारियों, ग्राहकों, आपूर्तिकर्ताओं, समुदाय और पर्यावरण — सबके हितों के प्रबंधन पर निर्भर।	कॉर्पोरेट शासन, CSR
पीटर ड्रुकर (Peter Drucker, 1909–2005; 'आधुनिक प्रबंधन के जनक')	"प्रबंधन मनुष्यों के बारे में है" — प्रभावी लोक प्रशासन को अंततः मानवीय ज़रूरतें पूरी करनी चाहिए।	जन-केंद्रित प्रशासन
हान्स मॉर्गेन्थाऊ (Hans Morgenthau, 1904–1980; जर्मन-अमेरिकी अंतरराष्ट्रीय संबंध विशेषज्ञ)	राजनीतिक यथार्थवाद — "राजनेता शक्ति के रूप में परिभाषित हित के अनुसार सोचते और कार्य करते हैं।"	अंतरराष्ट्रीय संबंधों में नैतिकता बनाम राष्ट्रहित
ह्यूगो ग्रीशियस (Hugo Grotius, 1583–1645; नीदरलैंड; 'अंतरराष्ट्रीय क़ानून के जनक')	जो स्वयं पर शासन नहीं कर सकता, वह परिवार, नगर या राष्ट्र पर शासन नहीं कर सकता; और स्वयं पर शासन तभी, जब वासनाएँ तर्क के अधीन हों।	आत्म-संयम ही नेतृत्व की नींव
मैरी पार्कर फ़ॉलेट (Mary Parker Follett, 1868–1933; अमेरिकी प्रबंधन-चिंतक)	"शक्ति-के-साथ" (सहयोगी शक्ति) बनाम "शक्ति-के-ऊपर" (दमनकारी शक्ति)।	सहभागी प्रशासन, टीम-भावना
डेसमंड टूटू (Desmond Tutu, 1931–2021; दक्षिण अफ़्रीकी आर्चबिशप, नोबेल शांति 1984)	दक्षिण अफ़्रीका के "सत्य और सुलह आयोग" के माध्यम से सार्वजनिक जीवन में समानुभूति और क्षमा की शक्ति दिखाई।	संघर्ष-समाधान, सुलह
डेनियल काह्नेमन (Daniel Kahneman, 1934–2024; इज़राइली-अमेरिकी मनोवैज्ञानिक)	अमोस ट्वर्स्की के साथ दिखाया कि संज्ञानात्मक पूर्वाग्रहों के कारण मानवीय निर्णय अक्सर तर्कहीन होते हैं (काह्नेमन — अर्थशास्त्र नोबेल, 2002)।	निर्णय में पूर्वाग्रह की जाँच
डगलस मैकग्रेगर (Douglas McGregor, 1906–1964; अमेरिकी प्रबंधन-विचारक)	थ्योरी X (कर्मचारी आलसी हैं, कड़ा नियंत्रण चाहिए) बनाम थ्योरी Y (कर्मचारी प्रेरित हैं, ज़िम्मेदारी चाहते हैं)।	कार्य-संस्कृति और नेतृत्व-शैली

आधुनिक शासन-चिंतन — छह सूत्र



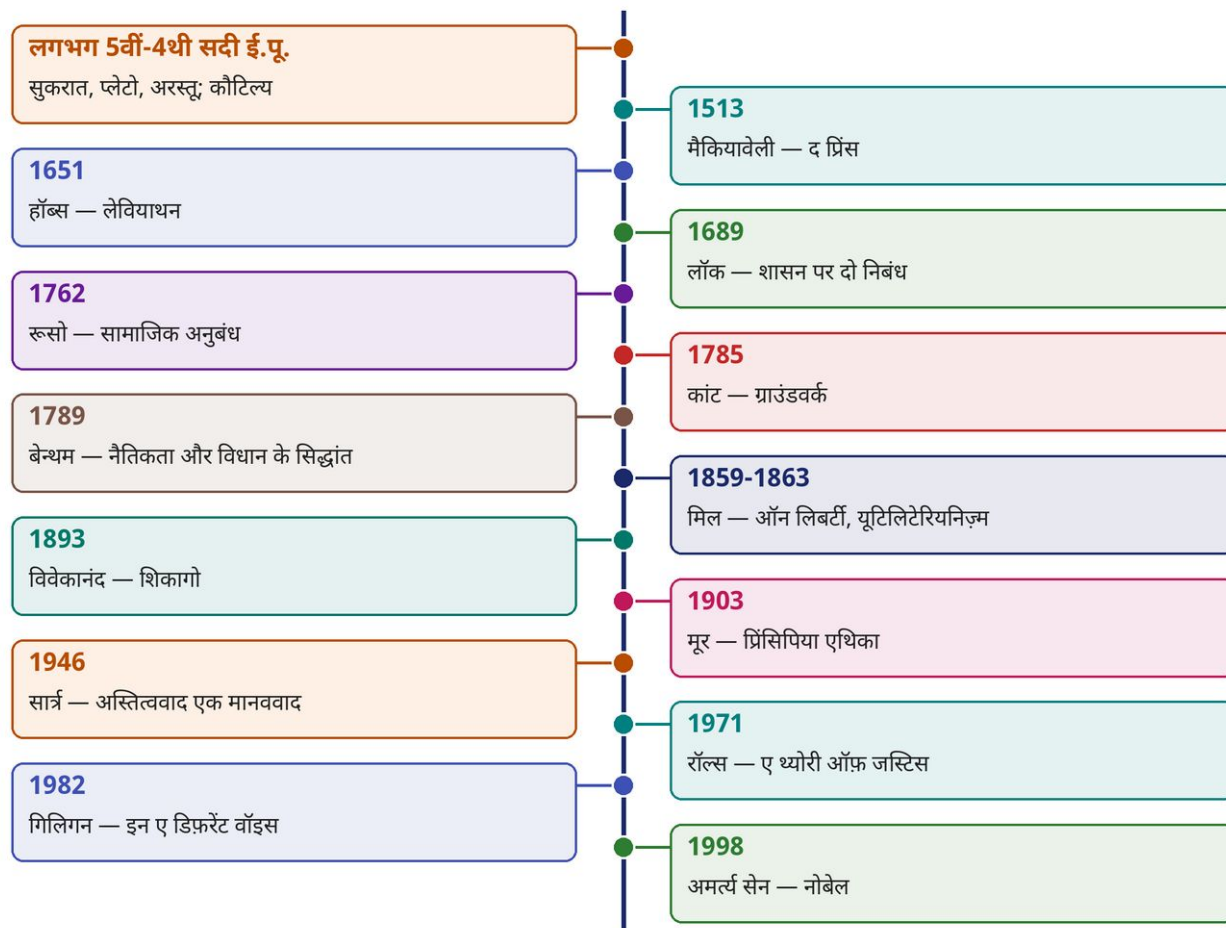
चित्र 6.23: आधुनिक शासन-चिंतन — छह सूत्र

उद्धरणों से जुड़े कुछ और नाम: पॉटर स्टीवर्ट (अमेरिकी न्यायाधीश — अश्लीलता पर "मैं इसे देखते ही पहचान लूँगा" कथन), दलाई लामा (सार्वभौमिक करुणा — "दूसरों के व्यवहार को अपनी भीतरी शांति नष्ट मत करने दो"), कार्ल वॉन क्लॉज़विट्ज़ (प्रशा के सैन्य-विचारक, 1780–1831, पुस्तक 'ऑन वॉर' — "युद्ध अन्य साधनों द्वारा राजनीति का ही विस्तार है"), नेपोलियन बोनापार्ट और वॉरेन बफ़ेट (नेतृत्व और निर्णय-क्षमता संबंधी कथन) — इनके कथनों को उनके नाम के साथ पहचानना उपयोगी है।

17. नैतिक विचारकों की ऐतिहासिक यात्रा — कालक्रम

वर्ष / संदर्भ	विषय / घटना
551 ईसा पूर्व	कन्फ्यूशियस (Confucius) का जन्म — चीन में सामंजस्य-आधारित नैतिकता की नींव।
469 ईसा पूर्व	सुकरात (Socrates) का जन्म — पश्चिमी नैतिक दर्शन का प्रारंभ।
427 ईसा पूर्व	प्लेटो (Plato) का जन्म — बाद में 'अकादमी' की स्थापना व 'रिपब्लिक' की रचना।
399 ईसा पूर्व	सुकरात को मृत्युदंड — विष का प्याला पीकर नियम-निष्ठा का ऐतिहासिक उदाहरण प्रस्तुत किया।
384 ईसा पूर्व	अरस्तू (Aristotle) का जन्म — बाद में 'निकोमेकियन एथिक्स' की रचना, नीतिशास्त्र के जनक।
लगभग 300 ईसा पूर्व	एपिक्युरस (सुखवाद) व ज़ेनो (स्टोइसिज़्म) द्वारा क्रमशः एपिक्युरवाद व स्टोइसिज़्म की स्थापना।
1724	इमैनुएल कांट (Immanuel Kant) का जन्म — बाद में कर्तव्यवाद/निरपेक्ष आज्ञा के सिद्धांत का प्रतिपादन।
1748	जेरेमी बेन्थम (Jeremy Bentham) का जन्म — उपयोगितावाद के जनक।
1770	जर्मन दार्शनिक हीगल (Hegel) का जन्म — 'सित्लिष्काइट' (Sittlichkeit) की अवधारणा, जो आगे चलकर ब्रैडले को प्रभावित करती है।
1772	राजा राम मोहन राय का जन्म — भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूत।
1806	जॉन स्टुअर्ट मिल (J.S. Mill) का जन्म — गुणात्मक उपयोगितावाद के प्रतिपादक।
1824	स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म — 'वेदों की ओर लौटो' के प्रणेता।
1828	राजा राम मोहन राय द्वारा ब्रह्म समाज की स्थापना।
1829	सती प्रथा निषेध विनियमन (Bengal Sati Regulation) पारित।
1846	एफ.एच. ब्रैडले (F.H. Bradley) का जन्म — 'मेरा स्थान और तत्संबंधी कर्तव्य' सिद्धांत के प्रतिपादक।
1861	रवींद्रनाथ टैगोर का जन्म।
1863	स्वामी विवेकानंद का जन्म।
1864	मैक्स वेबर (Max Weber) का जन्म — आधुनिक नौकरशाही सिद्धांत के जनक।
1872	श्री अरबिंदो का जन्म।
1873	जी.ई. मूर (G.E. Moore) का जन्म — 'नैसर्गिक भ्रांति' के प्रतिपादक।
1875	आर्य समाज की स्थापना — स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा।
1876	एफ.एच. ब्रैडले की कृति 'एथिकल स्टडीज़' (Ethical Studies) प्रकाशित।
1877	डब्ल्यू.डी. रॉस (W.D. Ross) का जन्म — प्रथम-दृष्ट्या कर्तव्य सिद्धांत के प्रतिपादक।
1888	डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का जन्म।
1891	डॉ. भीमराव आंबेडकर का जन्म।
1893	स्वामी विवेकानंद का शिकागो विश्व-धर्म सम्मेलन में ऐतिहासिक संबोधन।
1913	रवींद्रनाथ टैगोर को साहित्य का नोबेल पुरस्कार — यह सम्मान पाने वाले प्रथम एशियाई।
1921	जॉन रॉल्स (John Rawls) का जन्म — न्याय को 'निष्पक्षता के रूप में' परिभाषित करने वाले दार्शनिक।
1924	एफ.एच. ब्रैडले का निधन।
1933	अमर्त्य सेन का जन्म — आगे चलकर 'क्षमता उपागम' (Capability Approach) के प्रतिपादक बने।
25 नवंबर 1949	डॉ. आंबेडकर का संविधान सभा में ऐतिहासिक भाषण — स्वतंत्रता, समानता व बंधुत्व की अन्योन्याश्रितता पर बल।
1956	डॉ. आंबेडकर द्वारा लाखों अनुयायियों सहित बौद्ध धर्म की दीक्षा।
1958	जी.ई. मूर का निधन।
1971	जॉन रॉल्स की कृति 'ए थ्योरी ऑफ जस्टिस' प्रकाशित; इसी वर्ष डब्ल्यू.डी. रॉस का निधन।
1998	अमर्त्य सेन को अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार — 'क्षमता उपागम' व कल्याण-अर्थशास्त्र में योगदान हेतु।

नैतिक चिंतन — ढाई हज़ार वर्षों की यात्रा



चित्र 6.24: नैतिक चिंतन — ढाई हज़ार वर्षों की यात्रा

☀ अध्याय का सार — एक पंक्ति में

सुकरात से लेकर अमर्त्य सेन व मैक्स वेबर तक — चाहे सद्गुण नैतिकता हो, परिणामवाद हो, कर्तव्यवाद हो, पद-आधारित कर्तव्य हो, या भारत के आध्यात्मिक-सुधारवादी विचारक — हर नैतिक चिंतक का मूल संदेश एक ही रहा है: सही कार्य वह है जो बाहरी दबाव, लाभ या भय से नहीं, बल्कि आंतरिक विवेक, करुणा व कर्तव्य-भावना से प्रेरित हो; प्रशासन में यही समझ किसी भी अधिकारी को दबाव में भी निष्पक्ष व नैतिक बने रहने की शक्ति देती है।

बोनस: उत्तर-लेखन अभ्यास (मॉडल प्रश्न और उत्तर)

प्रश्न 1: "परिणामवाद (उपयोगितावाद) और कर्तव्यवाद (कांट) — दोनों में से कौन-सा दृष्टिकोण एक लोक सेवक के लिए ज़्यादा उपयुक्त मार्गदर्शक है?" विवेचना कीजिए।

उत्तर: दोनों सिद्धांत नैतिक निर्णय-प्रक्रिया के दो अलग-अलग पर पूरक स्तंभ प्रस्तुत करते हैं, और एक आदर्श लोक सेवक को दोनों का संतुलित उपयोग करना चाहिए।

◆ **उपयोगितावाद का महत्व:** नीति-निर्माण के स्तर पर — जैसे किसी योजना का बजट सीमित संसाधनों में अधिकतम लोगों तक कैसे पहुँचे (PDS, DBT) — यहाँ 'अधिकतम लोगों का अधिकतम कल्याण' सोचना व्यावहारिक व आवश्यक है।

◆ **कर्तव्यवाद का महत्व:** व्यक्तिगत आचरण के स्तर पर — जैसे रिश्तत लेना या तथ्य छुपाना — यहाँ 'परिणाम चाहे जो भी हो, यह कार्य नियम-विरुद्ध है' सोचना ज़रूरी है, क्योंकि उपयोगितावादी सोच से कई बार गलत कार्यों को भी 'बड़े भले' के नाम पर उचित ठहराया जा सकता है।

◆ **संतुलित दृष्टिकोण:** डब्ल्यू.डी. रॉस का 'प्रथम-दृष्ट्या कर्तव्य' सिद्धांत यहाँ सबसे व्यावहारिक समाधान देता है — सामान्यतः नियमों (कर्तव्यवाद) का पालन हो, पर असाधारण परिस्थिति में परिणाम (उपयोगितावाद) को भी विवेकपूर्ण ढंग से तौला जाए।

निष्कर्ष: एक परिपक्व लोक सेवक वह है जो नीति-स्तर पर उपयोगितावादी सोच अपनाए, पर व्यक्तिगत सत्यनिष्ठा व आचार-संहिता के मामलों में कांट के कर्तव्यवाद जितना ही दृढ़ रहे — यही संतुलन 'दक्षता' और 'सत्यनिष्ठा' दोनों सुनिश्चित करता है।

प्रश्न 2: 'मेरा स्थान और तत्संबंधी कर्तव्य' (My Station and Its Duties) की अवधारणा की व्याख्या करते हुए बताएँ कि यह एक आधुनिक सिविल सेवक के लिए किस प्रकार प्रासंगिक है।

उत्तर: ब्रिटिश दार्शनिक एफ.एच. ब्रैडले की यह अवधारणा बताती है कि नैतिकता कोई अमूर्त सिद्धांत नहीं, बल्कि समाज में व्यक्ति के 'पद' से जुड़े ठोस कर्तव्यों का पालन है।

◆ **मूल भावना:** व्यक्ति व समाज एक ही 'सामाजिक जीव' के अंग हैं — जैसे शरीर का हर अंग अपने कार्य से ही पूरे शरीर को स्वस्थ रखता है, वैसे ही हर व्यक्ति अपने पद के कर्तव्य से समाज को सुचारू बनाए रखता है।

◆ **गीता से समानता:** यह अवधारणा गीता के 'स्वधर्म' (अपनी स्थिति/वर्ण के अनुरूप कर्तव्य-पालन) से गहराई से मिलती है — दोनों ही 'अपने पद के अनुरूप कर्तव्य' पर बल देते हैं।

◆ **सिविल सेवक हेतु प्रासंगिकता:** एक कलेक्टर, SDM या अन्य अधिकारी का पहला नैतिक दायित्व उसके पद से जुड़े नियम व ज़िम्मेदारियों का पालन है — पद की सीमा से बाहर जाकर मनमाना निर्णय लेना, चाहे नीयत कितनी भी अच्छी क्यों न हो, इस सिद्धांत के विरुद्ध माना जाएगा।

◆ **सीमा:** यदि व्यवस्था/पद ही अन्यायपूर्ण हो (जैसे भ्रष्ट ढाँचा), तो यह सिद्धांत सुधार का मार्ग नहीं दिखाता — यहाँ रॉस के 'प्रथम-दृष्टया कर्तव्य' व व्यक्तिगत विवेक की भी आवश्यकता पड़ती है।

निष्कर्ष: 'मेरा स्थान और तत्संबंधी कर्तव्य' एक सिविल सेवक को यह सिखाता है कि उसकी पहली नैतिक ज़िम्मेदारी उसके संवैधानिक व प्रशासनिक 'पद' से बंधी है — पर इसे आँख मूँदकर नहीं, बल्कि विवेक व उच्चतर संवैधानिक मूल्यों के साथ संतुलित करके निभाना चाहिए।

